विद्यावाचस्पति

पद्मश्री डॉ. श्रीनिवास उद्गाता

कवि, कथाकार, उपन्यासकार, निबन्धकर, नाट्यकार, अनुवादक तथा सर्जनशील चित्रकार डॉ उद्गाता की अबतक 192 रचनाएँ प्रकाशित होचुकी है और आप प्रान्तीय तथा जातीय स्तर पर शताधिक संस्थाओं के द्वारा पुरस्कृत/सम्मानित होचुके है ।

आप ओड़िशा साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष थे , ललित कला अकादेमी, उत्कल तथा सम्बलपुर विश्वविद्यालय शिक्षा समिति के सदस्य रह चुके हैं। संप्रति आत्मप्रकाशनी के सभापति , नवलिपि प्रकाशधारा न्यास मण्डल के अध्यक्ष, भारतीय भाषा परिषद के न्यासी सदस्य , प्रसार भारती के उपदेशक सदस्य , स्वेच्छासेवी संगठन त्याग के मुख्य उपदेष्टा, शारळा पुरस्कार उपदेशक परिषद के सदस्य आदि पदभार सम्भाले हुए हैं ।

महामहिम राष्ट्रपति ने डॉ. उद्गाता को उनके सारस्वत सर्जनात्मक अवदानो की स्वीकृतिस्वरूप **पद्मश्री** सम्मानालंकृत किया है । सम्बलपुर विश्वविद्यलय के द्वारा **डी.लिट** , प्रयाग साहित्य सम्मेलन के द्वारा **विद्यावाचस्पति** , श्रीअखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा, कोलकाता के द्वारा आचार्य विद्यासागर पुरस्कार और सम्मानालंकृत होने के अलावा उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य संस्थान- सौहार्द सम्मान, शारळा पुरस्कार (इम्फा) , शारळा साहित्य संसद (कटक) के द्वारा सम्मानित और केन्द्र साहित्य अकादेमीऔर हिन्दी निदेशालय कर्तृक महामहिम राष्ट्रपति अनुवाद पुरस्कार, आदिआदि से महिमान्वित डॉ. उद्गाता **ओड़िशा के गांधी नृसिंह गुरु** (व्यक्ति व व्यक्तित्व) के रचयिता है ।

ओड़िशा के गांधी

नृसिंह गुरु

(व्यक्ति व व्यक्तित्व)

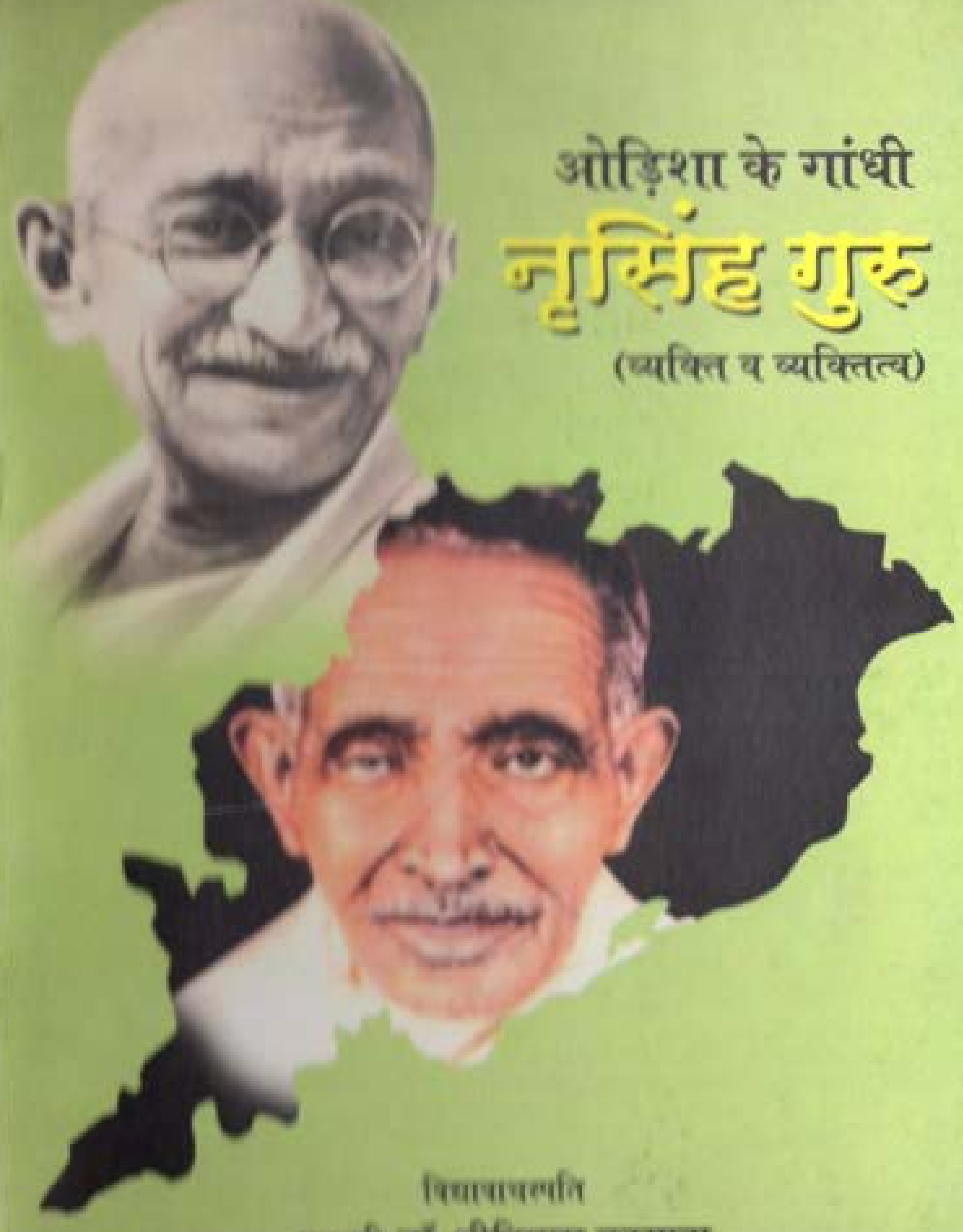

विद्यावाचस्पति

पद्मश्री डॉ. श्रीनिवास उद्गाता

ओड़िशा के गांधी नृसिंह गुरु
(व्यक्ति व व्यक्तित्व)

विद्यावाचस्पति
पद्मश्री डॉ. श्रीनिवास उद्‌गाता
०० आद्य संस्करण - २०१०
०० वर्ण संयोजन - एस्. .. ग्राफिक्स , बलांगीर
०० आवरण व अलंकरण-
०० मुद्रण-
०० प्रकाशक-
हेमन्त कुमार महापात्र
सचिव , नृसिंह गुरु स्मृति समिति,
मुदीपाड़ा , सम्बलपुर ७६८००२

०० मूल्य- ६०/-

Odisha Ke Gandhi Nrusingha Guru
by : Padmashri Vidyavachaspati Dr. Srinivas Udgata
First Edition - 2010
Published by -
Sri Hemanta Kumar Mahapatra , Secretary,
Nrusingha Guru Smruti Samiti,
Modi Para, Sambalpur

© Smt.Saudamini Udgata

Price- 60/-

हरि: ओम्

।। ओड़िशा के गांधी नृसिंह गुरु ।।

(व्यक्ति व व्यक्तित्व)

... ... मात्र, समय तो वह प्रवाही स्रोत है , उसे रोको तो रुकता नहीं । समय के साथसाथ एक खास समय को जीनेवाले, वे भी रुकते नहीं है। पर, उस प्रवाही स्रोत की अटूट निरंतरता बनी रहती है, क्यों कि वह अनन्त होता है, जिसका न आदि है न अंत। शरीर नाशवान् है परन्तु आत्मा नहीं। आत्मा तो उस मालिक की वशंवदता में तैयार बनी रहती है, कि हुकम हो और बेहिचक तामील भी हो । तयशुदा होता है वक्त ,मानव, मानवेतर यहां तक कि वानस्पतिक प्रकृति के लिए भी । सब के लिए वही एक ही विधि होती है। एक बिन्दु जन्म है तो अंतिम बिन्दु है मृत्यु और उन दोनों बिन्दूओं को जोड़नेवाली जो अवधि की रेखा होती है , भले ही वह सरल हो या वक्र , उसे लोग जीवन कहते हैं । कुछेक चिन्ताकों का कहना है कि यह जीवन एक अभिनय है । वह कतई सच नहीं । हो सकता है यह संसार एक रंगमंच हो पर जीवन एक नाटक नहीं । नाटक के किरदार तो जानते हैं कि आगे क्या होनेवाला है , अंत कहां होगा, कैसे होगा। पर, जीवन में वह नहीं होता । अंतिम पल की जानकारी तो दूर की बात रही, तत्काल आनेवाला क्षण भी अज्ञात, अगोचर, अपरिचित होता है। वर्त्तमान का अतीत होना सभी महसूस कर लेते हैं पर, आनेवाला पल और कल को देखा किसने है ? आदमी अमर नहीं होता, अमरता प्राप्त होती है आदर्श को। आदर्श में शामिल हो होती है वे प्रवृत्तियां, जिससे एक आम आदमी की भी वह खास पहचान रोशन हो जाती है कि आनेवाले कल के मन-मानस पर उस व्यक्तित्व की छवि कुछ इस भांति उभर आती है , श्रद्धा सम्मान के न मिटनेवाले , न मिटाए जानेवाले रंगों से कि इतिहास तक बोल कर , दुहराकर समाज समूह को याद दिलाता रहता है कि फलां एक उम्दा आदमी था, जिसका खुद के साथ कोई रिश्ता नहीं था , क्यों कि वह जीता था दूसरों के लिए , समाज के लिए ।

स्वाभिमानी था , सच और यथार्थ बोलनेवाला स्पष्टवादी । उसकी अपनी कोई स्वारथ की लड़ाई नहीं थी , पर जिन्दगी भर दूसरों की लड़ाई लड़ते हुए लहूलुहान होकर भी संघर्ष का मजा लूटता,था वह, अप्रमित बल , शक्ति, समर्थता , दंभ, लगन से और ताज्जुब तो यह है कि उसके सामने कोई दुश्मन नहीं था । सभी दोस्त थे, सब से यारी थी , प्यार था, सहानुभूति थी। उसी में उलझ कर उस आम आदमी की खासीयत यह थी कि उसकी अपनी कोई समस्या नहीं थी जो हल तलाशने के लिए उसे परेशान करे या कोई कमी नहीं थी जो उसे सर पर हाथ धरे बैठे रहने को मजबूर कर दे। वह एक अनासक्त-आसक्त, स्वयं के प्रति पूर्णतया उदासीन, रमता योगी था। आडम्बरहीन, अहंशून्य, संकल्पसिद्ध, सेवानुराग को ईश्वरानुराग के रूप में मन-वचन-कर्म से स्वीकारनेवाला अनन्य साधारण व्यक्ति था, देवत्व से महिमान्वित ।

जब मैंने स्वीकारा कि मैं उस महापुरुष , मानवों में महामानव उस दिव्य पुरुष को भाव नायक के रूपमें लेकर कुछ लिखदूँ तथा लिखने के लिए मानसिक रूप से तैयार होने लगा तब यह विचार मन को झकझोरने लगा - लिखूँ तो क्या लिखूँ ? किस स्वरूप में , किस शैली में लिखूँ । जीवनवृत्त, जीवन चरित या एक सपाट इतिहास, जिसमें समयक्रम में तारीख हो, घटनाओं के विवरण हो , आदिआदि । तब मन ने मना किया।

अब स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैंने उन प्रात:स्मरणीय दिव्यपुरुष को महानायक के रूप में लेकर इस नातिविशाल पुस्तक की सर्जना के लिए अपनी मानवीय क्षमता की सीमा में प्रयासी हूँ । वे हैं ओड़िशा के गांधी के रूप में विदित और सम्मानित नृसिंह गुरु। स्थूल शरीर में विद्यमान न होने के बावजूद वे सभी अनुरागियों के चित्त सिंहासन पर विराजित होकर हैं । मैं यह नहीं चाहता कि उनके जन्म से लेकर देहावसान तक के जीवन वृत्त क्रम में लिपिबद्ध हो । पुरुषोत्तम श्रीराम , योगेश्वर श्रीकृष्ण, बुद्धदेव , महात्मा गांधी आदि युगपुरुषों की जीवनी में सूचित कथाक्रम से नहीं , उन घटनाक्रम में अन्तर्निहित सैद्धान्तिक विचार, जीवन सहित अभिन्नता में सम्मिलित प्रतिबद्ध और अनुशासित कर्म, स्वभाव आदि से समाज तथा वर्त्तमान से लेकर अनागत भविष्य तक प्रभावित होता है , अनुप्रेरित होता है , उन्हीं तत्व और तात्त्विकता को तलाश कर निष्कर्ष के रूप में सहेजना चाहता हूँ । यह भी जानता हूँ कि परमहंस रामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरविन्द आदिआदि , जिन्हें समकालीन विश्वने देखा है, जिनकी श्रद्धा से आराधना की है, उनकी

जीवनी के पन्नों को अक्षरश: कण्ठस्थ करलेने से भी कोई अपने को उनमें रूपान्तरित कर नहीं पाएगा । पर, यह भी तो सत्य ही है कि उन गुणों के, उनके विचारों के अगाध सागर से एक बुंद तक को भी स्वीकार कर ले तो तर जाए।

सत्यवादिता , नि:स्वार्थ समाजसेवी वृत्ति, परोपकार, वचनबद्धता आदि सद्गुणों में से कोई किसी एक ही को भी अपना ले तो अपने आप योगी, साधु, संत में रूपान्तरित होजाए। परिणामत: उसे ईर्ष्या, असूया, परस्त्रीकातरता ,लोभ , आत्मकेन्द्रिकता, आलस्य, दुराग्रह, अहं,शठ भ्रष्टाचार, भेददर्शिता, आदि आदि अनगिनत सारे कालिमामय अवगुण स्पर्श तक करने का साहस कर न पाएँ । वह शक्ति दिव्यात्मा नृसिंह गुरुजी में थी । वह शक्ति उन्हें अपनी भूमि और भूमा के प्रति समर्पित श्रद्धामयी भक्ति से प्राप्त हुई थी।

पूजनीय गुरुजी अति स्वाभिमानी, यथार्थ को सही मायने में सोचने समझने वाले व्यापक दृष्टिकोण के व्यक्ति थे । क्यों कि वह उनके जीवन में भोगाहुआ यथार्थ था, जिससे मानों समाज की सारी दुस्थितियाँ, सुख-दु:ख, अपने खुद के दायरे से परे, उनके अपने थे और वे उसके लिए चिन्तित और परेशान रहते थे। गांधीजी के वैचारिक सिद्धान्तों के अनुयायी उस दम्भिक कृतनिश्चयी व्यक्ति को मैंने सब से पहले नारी सेवा सदन, सम्बलपुर के सभागार में देखा और सुना था । महात्मागांधी की कदकाठी के, मिलता जुलता-सा चहेरा, निराडम्बर परिधान ,अनावश्यक न बोलनेवाले नम्रभाषी किन्तु सत्य की पक्षधरता में अड़िग। अवसर था गांधी जयन्ती का, २ अक्तूबर १९८२ (शायद)। भारतीय स्वतंत्रता के तीस वर्ष बीत जाने के बावजूद आम आदमी जहां का तहां था । न कोई आर्थिक विकाश, न शैक्षिक । वे तो शहरों में एक तरह से गांवों से वाध्यता में विस्थापित, मेहनत मजदूरी से बसने पलनेवाले कच्ची झोपड़ियों के, जहां जगह मिली वहां वस्ती बनाकर बसे प्रदूषित और अस्वास्थ्यकर माहौल में वक्त और जिन्दगी गुजारनेवाले शोषित समुदाय । भ्रष्ट राजनीति के ऐलानों में खुशहाली थी और आम आदमी निर्द्धन, दाने-दाने को तरसने वाला ,जो तटस्थ आंखों से उन मुनाफाखोर कालाबाजारी, राजनीति की अनीतियों के द्वारा सुरक्षित प्रशासन और एक के बाद एक बनते आलीसान इमारतों से बढ़ते विकसित होते , फैलते शहरों को देखा करता था । उस सभा में उन्होंने प्रसंग क्रम में नाराजगी ही में बताया था कि स्वतंत्रता सेनानी की कुर्बानी अर्थहीन लगने लगी है। स्वतंत्रता आंदोलन तो अब शुरु होना चाहिए । गांधीजी के विचार भी तो वही थे कि संतंत्रता सेनानी प्रशासनिक राजनीति में भाग न लें । जनसम्पर्क साधते हुए आम लोगों

में क्या है स्वतंत्रता , क्या है गणतंत्र समझाते हुए शिक्षा, सेवा,सचेतनता से अनुप्रेरित करें। उसे सकारात्मक रीति से स्वीकारा संत विनोबा जी ने, भूदान को आन्दोलन के रूप में लेकर भारत भर में पदयात्रा की, पारस्परिक परिपूरकता, स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक विकाश के लिए योजनाएँ प्रस्तुत करके अथक प्रयास जारी रखे हुए थे । वैसे शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्र पंडित मदनमोहन मालव्य आदि को श्रद्धा से निरंतर स्मरण करेगा । वैसे ही उत्कलभूमि में शिक्षा के स्तर को विकशित करने को कटिबद्ध तथा सेवा के प्रति समर्पित महापुरुष उत्कलमणि गोपबंधु को सदा स्मरण करते हैं । गांधीजी की उत्कल पदयात्रा के दौरान वे उनके साथ साथ रहे । काठज़ोड़ी नदी की बालूका शय्या पर अपने अनुयायियों को लेकर आडम्बरहीनता में सभा का आयोजन किया । उन सहकर्मियों में मेरे पिताश्री स्व.श्रीधर उद्गाता भी थे । जिनसे मैंन कभी कभार जो विवरण सुने हैं वे अकल्पनीय, अलौकिक किंवदन्तियों के समान है । यह १९२१ की बात है । इसका जिक्र मैंने निःसंकोच कर पाया क्यों कि समर्थन के रूप में एक फोटोचित्र है उस काठज़ोड़ी तट की सभाका । एक तख्तापोश है जिस पर एक कुर्सी पर गांधीजी विराजित हैं , उत्कलमणि उकड़ूँ बैठेहुए हैं । पीछे एक कतार है सहकर्मियों की जिन में एक चद्दर ओढ़ कर २१ साल का एक युवा हैं । वे मेरे पिताश्री हैं । तब ओड़िशा के गांधीजी की उम्र १८ साल की रही होगी ।

उस दिन याने २.१०.१९८२ गांधी जयन्ती के अवसर पर ही मैंने पूज्य गुरूजी को एक बार देखा है , न पहले कभी देखा था न बाद में । तब तक तो सही सही जानता तक नहीं कि वे , धीर बोली में दृढ़ता के साथ स्पष्ट ओजपूर्ण शब्दों में बेहिचक बोलनेवाला अवश्य ही कोई आत्मलीन , उदासीन योगी होगा जो अपने खुद के लिए नहीं, दूसरों के लिए ,अवहेलित आम आदमी के लिए भीतर से तड़पते हुए बेचैन है । अवश्य ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महास्रोत में अपने को बहा कर देश के लिए बहुतरे सुनहैरे सपने देखे होंगे। रामराज्य की प्रतिष्ठा होगी, खुशहाली आएगी, अपना देश, अपना शासन, सब के लिए समान अधिकार, वाक्स्वाधीनता आदिआदि और अब आशा-कल्पना के उस भव्य भवन को ढहते-बिखरते देख कर बिफर रहा है । सभा के अंत में उन्हें चरणस्पर्श प्रणाम करने का मौका भर मिलाथा । उनके बारे में अधिक से अधिक जानने, उन्हें समझने की उत्कण्ठा तो मनमें जागी थी। परन्तु, वे पत्रकार हैं, स्वतंत्रता संग्राम में अंशग्रहण करने वाले एक अहिंसक साधक हैं ; इस तरह की सामान्य

जानकारी,वह भी वाचनिक, मेरे हाथ लगी थी । वे प्रभुलीन हुए २ जनवरी १९८४ की रात को सारंगगढ़ में और वैदिक विधि से क्रिया-कर्म संपन्न हुए सम्बलपुर में। हजारों की संख्या में समवेत श्रद्धालु जनों ने उन दिव्यात्म पुरुष के मर शरीर को पंचभूतों में लीन होते समय उन की स्मृति में श्रद्धासुमन चढ़ाए। और लाखों के हृदसिंहासन पर वे विराजित अधिष्ठित होकर हैं ।

यह शरीर नाशवन्त है । अशक्त जीर्ण हो जाता है । ''**श्रीमद्भगवत गीता**'' की भागवती वाणी ''**अन्तावन्त इमें देहा नित्यस्योक्ता : शरीरिण : । अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धस्व भारत ।।**'' ।। २-१८।। यह जो शरीर है , अन्तावन्त है । नाशरहित , अप्रमेय, नित्यस्वरूप है यह जीवत्मा, अमर है । अत: हे भरतवंशी तुम युद्ध करो। नाशशील शरीर में विद्यमान अमर आत्मा के बारे में बोध और दिव्यज्ञता थी पूज्य गुरुजी की। वही ''युद्ध करो'' की कर्तव्यनिष्ठा ही मानों उनमें प्रभुकृपा से निहित होकर उन्हें निरंतर सत्य, यथार्थ भावना से अनुप्रेरित करते हुए अमरता की और लिए चलती थी कि वे कदापि धर्मच्यूत हुए नहीं । जब उन्होंने देहरक्षा की, प्रभुलीन हुए, उस समय की स्थिति और घटना अपने आप में अलौकिक है । वस्तुत: ही नहीं यथार्थत: वे राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के अनुरूप दिव्यपुरुष ''**गाँधी**'' थे अत: उन्हें ओड़िशा के गाँधीजी के रूप में स्वीकार करते हुए श्रद्धार्पित करना कतई अयौक्तिक नहीं है , न वह एक अतिशयोक्ति ही है।

दयानन्द शतपथी नृसिंह गुरुजी के अभिन्नात्म मित्र थे। सन् १९८३ मई ३१ तारीख में दयानन्दजी का सम्बलपुर सदर अस्पताल में देहान्त हुआ। वे दोनों नमक आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन में भी सह-संग्रामी थे। दोनों में अन्तरङ्ग मित्रता के साथ साथ उनमें पारिवारिक सम्बन्ध भी था। गुरुजी दयानन्द के अंतिम दर्शन के लिए अस्पताल पहुंचे थे । उसी समय उन्होंने भी अनुभव किया कि वे भी उसके पश्चात और अधिक दिनों के लिए जीवित रहेंगे नहीं । अध्यात्म विश्वासी, नित्य शास्त्र-पुराणाध्यायी, तत्वविद् गुरुजी को यह तो निश्चित पता ही था ''**न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूय: । अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।**'' (श्रीगीता २-२०)। आत्मा का किसी भी समय जन्म नहीं होता क्यों कि वह अजन्मा, नित्य तथा सनातन है । शरीर का वध हो जाए तो भी आत्मा बनी रहती है। गुरुजी में वह बोध था, फिरभी जागतिक मानसिकता में मित्र का बिछुड़ना उनके लिए

निराशादायी अवश्य था ।

१.१.१९८४ - नववर्ष के अवसर पर सम्बलपुर जिला पत्रकार संघ द्वारा आयोजित उत्सव के लिए मुख्य अतिथि के रूपमें गुरुजी आमंत्रित थे तथा उसी उपलक्ष में उन्हें मानपत्र, उपढ़ोकनादि से अभिनन्दित करने की भी योजना थी । गुरुजी में उसके प्रति उदासीनता ही थी, फिरभी, उन्होंने भाग लेते हुए सम्वर्धना के उत्तरस्वरूप कहा - वे प्रसन्न तो हैं ही पर वे जानते हैं कि जीवन में कर्मयोग का अवसान होने लगा है और वे जीवन-संग्राम से अवकाश लेना चाहते हैं । एक तरह से वह जगताधार प्रभु से उनकी मौन प्रर्थना थी । वे ही पत्रकार संघ के प्रतिष्ठाता सभापति थे । उस दिन कोशल भवन में अनुष्ठित उस उत्सव में उपस्थित मित्रगण गुरुजी के मुखमण्डल पर सौम्य-विषाद देख कर विषन्न भी हुए थे ।

उसके दूसरे दिन जनवरी २ तारीख को सुबह कार से अपनी ज्येष्ठ कन्या **कुमुदिनी** और जामाता **युधिष्ठिरजी** के साथ मध्यप्रदेश **सारङ्गगड़** के लिए रवाना हो गये। उन्हें वहां अपने साले की पुत्रवधू की अन्त्येष्ठी कर्म में भाग लेना था। पूज्या कुमुदिनी और युधिष्ठिरजी को भी उसमें शामिल होना ही था । सारङ्गगड़ श्वशुरालय में पहुंच कर गुरुजी ने हृदयघात का अनुभव किया। मानों आगत अंतिम समय ही का दर्शन किया था उन्होंने और वे पूजा घर में पहुंचे । साथ में ज्येष्ठ कन्या कुमुदिनी भी थी जिन्हें गुरुजी माता के रूपमें आदर करते थे । उन्होंने माता कुमुदिनी से अपनी अस्वस्थता के बारे में बताया और उसी माता की गोद पर माथा टिकाए देव विग्रह को निर्निमेष देखते रहे । माता की गोद से बढ़ कर कोई और निर्भय, परम आश्रयद, पवित्र क्षेत्र तो है नहीं ! और देवतात्मा गुरुजी '' **हेराम !**'' उच्चारित कर के प्रशान्त महानिद्रा में लीन हो गये। **परमयोगी श्रीअरविन्द** की वाणी के अनुसार -'' तुम अपने को माँ के निकट समर्पित कर दो, उसी माता के माध्यम ही से तुम्हें परमात्मा प्राप्त होंगे । गुरुजी ने कन्या कुमुदिनी में मातृदर्शन किया था और अपने को समर्पित करके परमात्मा के परमधाम की ओर महायात्रा की थी , **महात्मा गाँधीजी** की तरह पूर्ण समर्पण समान ''हे राम !'' के उच्चारण से विभु-सन्निधि की कामना करते हुए ।

जिस कार से उन्होंने सारङ्गगड़ के लिये यात्रा की थी उसी में उनके मरशरीर को हजारें के द्वारा अंतिम दर्शन और श्रद्धार्पण हेतु सम्बलपुर मोदीपाड़ा स्थित लेवर कालोनी को लाया गया । दलमत निर्विशेष से हजारों ने अंतिम दर्शन किया , भव्य किन्तु

शोकाकुल सहस्रों की उपस्थिति में महानदी के राजघाट में मर शरीर का अंतिम संस्कार सम्पन्न हुआ था। महात्मा गाँधीजी तथा पश्चिम ओड़िशा के महिमान्वित गाँधी पूज्य गुरुजी भावनात्मक विचार से अभिन्न थे ।

तदुपरान्त मुझे जो भी जानकारी और सूचनाएँ प्राप्त होती रही वे सभी लगभग स्मारिका और समाचार पत्रों के विवरण से ही । मेरी जानकारी में पांच पुस्तकें उन अनन्य साधारण महापुरुष के जीवनवृत्त के रूप में प्रकाशित हुई हैं । वे हैं **डॉ.यज्ञ कुमार साहू** की '' *सम्बलपुर रे स्वाधीनता संग्राम ओ नृसिंह गुरुङ्क भूमिका*'' (ओड़िआ में - नवंबर २००३), हिन्दी में **डॉ. बलराम दास** की रचना '' *पश्चिम ओड़िशा के महात्मा गांधी नृसिंह गुरु*'' (२००५) और अंग्रेजी में प्रणीत **प्रो.गिरिधारी प्रसाद गुरु** की The Guru and the Mahatma, a biography of Nrusingha Guru । सम्बल पुर विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी में **प्रो.चित्त रंजन मिश्र** की भी एक रचना है (Nrusingha Guru - the Freedom fighter) । इनके अलावा संस्कृत में **''नृसिंह शतकम् ''** शीर्षक से **डॉ. निरंजन पति** की एक भव्य रचना है ।

यथार्थ में राष्ट्र के लिए समर्पित विद्रोह, आन्दोलन या संग्राम किसी एक का नहीं होता, होता है सम्मिलित रूप में समूह का। हर दीर्घतम यात्रा एक आद्य कदम ही से होती है, फिर अग्रगति और सम्पन्नता। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सभी के लिए मूलत: बस एक ही की अनुप्रेरित प्रेरणा होती है , आतुरता होती है और वे ही एक अकेले ध्येय-पथ पर निकल आते हैं, फिर सम्मिलित होते है साथी अनुयायी, संघ, संस्था प्रतिष्ठित होती है, विकाश होता है, सैद्धन्तिक विचारों के प्रयोग होते रहते हैं । उसके समर्थन में बहुतरे ऐतिहासिक उदाहरण हैं। दृष्टान्तत: हम सिद्धार्थ बुद्ध देव, श्रीचैतन्य महाप्रभु को ले सकते हैं। इस पुस्तक की सीमा के अन्तर्गत इस प्रसंग पर विचार अप्रासंगिक नहीं है , फिरभी, भारतीय स्वतंत्रता या मुक्ति संग्राम को लेकर महात्मा गांधी के विचार तथा तदनुसार कार्यान्वयन और सफलता को लेकर ओड़िशा के गांधी के रूप में विदित व सम्मानित नृसिंह गुरुजी की प्रतिबद्धता और जीवन शैली की चर्च्चा संक्षेप में करना चाहूंगा। प्रो. यज्ञ कुमार साहू ने अपनी सफल रचना '' सम्बलपुररे स्वाधीनता संग्राम ओ नृसिंह गुरुङ्क भूमिका '' में क्रमिक सूचना प्रदान करते हुए जो विचार व्यक्त किया है वह लक्षणीय है।

अनेक सशस्त्र संग्रामों की असफलता से मिली वैचारिक उपलब्धि के आधार पर गांधी जी ने निष्कर्ष के रूप में निर्द्वंद्व स्वीकारा कि भारत ने अपने विच्छिनता तथा

संकीर्ण स्वार्थ प्रेरित षड्यंत्रों के कारण, आंचलिक विचार वैषम्य, व्यक्ति और व्यष्टि में पारस्परिक पूरकता के सहयोगी सहभागिता के अभाव में अपनी आजादी खोयी है । अपनी मुक्ति के लिए जो विरोध, विद्रोह है या जिनके खिलाप वह आजादी की लड़ाई है वे तो भारत में एक तरह से भीखारी के रूप में आए थे , कमाने खाने के लिए पनाह , क्षेत्र और इजाजत की प्रार्थना की थी । वे राजा कैसे बने , आसरा तलाशते जिस माटी में वे विदेशी आए , उसी भूमि पर एक एक कर कब्जा करते हुए राजपद के अधिकारी बने कैसे ? वह एक विडम्वना है और वह विडम्वित अध्याय भी अकल्पनीय है । राजा के आगे झोली फैलाए जो भिक्षुक है, दूसरे पल उसे ही कोई राजपद पर सिंहासनारूढ़ देखे तो, स्थिति की कल्पना तक उसके लिए सम्भव नहीं होगा । उसके लिए भारतीयों में असहयोग, क्षेत्रिय स्वार्थ , विश्वासघात, षड्यंत्र, विच्छिन्नता , अखण्ड भूमि को व्यक्तिगत लाभ लोभ से प्रेरित हो विखण्डित करने की कुत्सित मानसिकता ही कारण है । अनगिनत ऐतिहासिक मिसालों से एक को ही लेते है - टीपू सुलतान ! वे अकेले ही अंग्रेजों को भारत से मार भगाने को समर्थ सक्षम थे । पर उसके विपरीत असफल हुए मित्ररूपी छोटेछोटे शत्रु राज्यों के विश्वासघात के कारण।

गांधीजी उसी विचार-प्रणोदित हो कर भारत भर में पदयात्रा की थी, समूह में भावनात्मक एकात्मता, वैचारिक समानता, पारस्परिक सहयोगिता सहभागिता की प्रतिष्ठा के लिए , जिसके अभाव में भारत ने अपनी अनमोल स्वतंत्रता खोयी थी। उस विखण्डित विचार में अखण्डता के सूत्र पिरोते हुए , एकता आत्मीयता के भावों से सचेतनता जगाते हुए महात्माने भारत भरमें जिस अहिंसक आन्दोलन को साकार रूप प्रदान किया वह है सत्याग्रह, असहयोग । यह पवित्र भूमि मुक्त हुई , आजाद हुई । समकालीन ऐतिहासिक दृष्टान्तों में ही नहीं,आज तक विश्वभर में किसी भी विद्रोह,बगावत , संग्राम गांधीजी की अगुआनी में लड़ीगयी भारतीय आजादी की लड़ाई सहित तुलनीय है नहीं । गांधीजी ने देश भर को एक करके , सिद्ध संकल्प से आजादी दिलायी । साबरमती के संत बापू ने तो कमाल ही कर दिया , बिना खड्ग बिना ढाल के लड़ायी लड़ कर ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वतंत्रता के सशस्त्र संग्राम में व्यक्तिगत सुखशान्ति की तिलांजलि देकर , जिन बलिदानियों ने पद प्रतिष्ठा, जीवन तक को तुच्छ मान कर उस लड़ाई के होमकुण्ड की निरन्तर प्रज्वलित अग्निशिखा में हँसते हुए प्राणों की आहुति दे दी ; शारीरिक निर्यातन , कारादण्ड, मृत्युदण्ड को स्वीकारते हुए फांसी के फन्दे को

फूलों की माला मान कर निशंक पहन लेने को कुण्ठित हुए नहीं, उनमें देशप्रेम की भावना, निष्ठा, प्रतिबद्धता, शौर्य , सामर्थ्य में कोई कमी नहीं थी। वे संग्रामी शूर थे, वीर थे, योद्धा थे। शक्तिमान थे। विद्रोह दमन के अंग्रेजों ने जो समूह नरसंहार से इस माटी को रक्तरंजित, शोणित से कर्दमाक्त कर दिया उससे भी त्रस्त, भयभीत हुए नहीं, वे कटिबद्ध थे, अड़िग थी उनमें समर्पण की भावना । वे कृतसंकल्पी थे । वे मृत्युंजयी भारत माता की प्यारे वीर संतानों के बलिदान अप्रतिम अतुलनीय है । **शहीद भगत सिंह , चन्द्रशेखर आजाद , वटुकेश्वर दत्त** ,आदिआदि अमर देशभक्तों की भूमिका, **वंदे मातरं** , **नेताजी सुभाषचन्द्र बोष** के नेतृत्व में संगठित **आजाद हिन्द फौज** , **सिपाही बगावत**, झांसी की महारानी **लक्ष्मीबाई** , चाखीखुण्टिआ (चन्दन हजूरी), उत्कल भूमि में **बक्सी जगबन्धु, लक्ष्मण नायक**। पश्चिम ओड़िशा में **वीर सुरेन्द्र साए** तथा उनके शताधिक सहयोगी संग्रामी जो आजीवन कारावास की सजा भुगते , जिन्हें मृत्यदण्ड मिला; विडम्वना तो यह है कि दण्ड देनेवाले मूलत: गुलाम होने लायक भी नहीं थे और दण्डित होनेवाले थे भारतीय मालिक। यह इतिहास है । इतिहास के पत्रों में सूचना, विवरण , विचार सहित ये कलंकित अध्याय समूह मार्गदर्शी के रूप में हैं , ऊंची आवाज में ऐलान करते हुए कि राष्ट्र के लिए विच्छिन्नता के विचार, संकीर्णस्वार्थ, एकताहीन कर्म और विभेदी स्वर आदि नकारात्मक प्रवृत्तियां हर घड़ी, हर स्थितियों में खतरनाक है और उनसे व्यक्ति, समाज, देश का किंचित्मात्र हित साधन नहीं होता। गांधीजी के भाषण, विचार, लेख, ग्रंथ, कार्य-प्रक्रिया आदि से तथा उन पर रचित सहस्त्राधिक वैचारिक सिद्धान्तों को विश्लेषित करते विद्वान, चिन्तक, विचार विशेषज्ञों के तार्किक अभिमत भारतीय आजादी की लड़ाई के प्रसंग में संक्षेप में तथा निष्कर्ष के रूप में जो है लगभग उसीके समर्थन में गांधीजी ने भी अपनी छोटी-सी, मूलत: गुजराती में लिखित हिन्द स्वराज पुस्तिका में यही कहा है । इस पुस्तिका का अंग्रेजी अनुवाद ' *इण्डियन होम रूल*' के नाम से उन्होंने स्वयं किया है और बाद में आत्मकथा ' *सत्य के प्रयोग* 'में भी उसीका सैद्धान्तिक साम्य से साक्षात्कार होता है।

गांधीजी की डायरी , आत्मकथा , लेख , टिप्पणी , चर्च्चा , विचार विमर्श संरक्षित है , जिन पर समीक्षात्मक चर्च्चाएँ होती रहती हैं जिससे उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट चित्र उजागर हो जाता है । दुर्भाग्य की बात तों यह है कि ओड़िशा के महात्मा गांधी नृसिंह गुरु के बारे में न उनके और न उनके समकालीन दूसरों के द्वारा भाषा-भारती के

माध्यम से कुछ लिपिबद्ध होकर, जिससे उनकी कर्ममय जीवन प्रक्रिया , शैली के साथसाथ व्यक्तित्व का सही चित्रांकन सम्भव हो । गांधीजी के क्षेत्र की विशालता, विश्व भर में आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक, राजनैतिक, संबंधों की व्यापकता आदि की तुलना में स्व.नृसिंह गुरु की क्षेत्र सीमितता को समेट कर भावसाम्य व कर्म-प्रक्रिया में वैचारिक समानता की तलाश के नम्र प्रयास है इस ग्रंथ के माध्यम से।

भारतीय आजादी की लड़ाई के लिए सब से पहले यह आवश्यक था कि भारतभर में एकतात्मक संगठन हो । लोगों के मन में यह विचार दृढ़ हो कि मैं धार्मिक आस्था से हिन्दू-मुसलमान या कुछ और नहीं भारतीय हूं । उस भावना के अन्तर्गत समाज में वर्ग, वर्ण, जाति,छूआछूत, नागरिक अधिकार के भेद न हो । लक्ष्य एक हो । और वे उसी दृढ़संकल्पी विचार-प्रेरित होकर देश भरको एकता के सूत्र में संगठित करने के पदयात्रा के जरिए आम और खास सब से मिले। उसी सिलसिले में उन्हों ने १९२१ में उत्कल भूमि की पदयात्रा की । उनके आह्वान से आजादी को लक्ष्य मान कर सभी और विशेष कर युवावर्ग अप्रत्यासित रूप से जुट गये । यही वह समय है जब गुरुजी का एक तरह से भारतीय आजादी के लिए संघर्ष की राजनीति में उदय हुआ। गांधीजी ने उस लड़ाई के लिए एक अभूतपुर्व हथियार खोज निकाला था, जिसे उन्होंने सत्याग्रह नाम दिया था और प्रयोग की विधि थी अहिंसक। विरोध तो विपरीत से होता है, जैसे आग बूझाने के लिए पानी चाहिए । उसी प्रकार अंग्रेजों के अत्याचारी अमानवीय हिंसक दमन के खिलाफ लड़ कर देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए ध्येयरूपी अस्त्र का चयन किया वह है अहिंसा । और वह आन्दोलन देश भर में असहयोग आन्दोलन (Non-Cooperation Movement) के रूप में विदित हो सब ने पूर्णप्राण से स्वीकारा। १९२१ असहयोग आन्दोलन में सम्बलपुर की महत्वपूर्ण भूमिका थी और **स्व.नृसिंह गुरु** के संग्रामी जीवन की शुरुआत उसकी विशेषता है । तब गुरुजी उम्र में १८ साल के थे।

उस समय को याद करते हुए ऐतिहासिक प्रो.यज्ञ कुमार साहू (ओड़िआ में) , प्रो.गिरधारी प्रसाद गुरु (अंग्रेजी में) और प्रो.श्री बलराम दास (हिन्दी में) ने भाषा भेद से समान विवरण प्रदान करते हैं । प्रो. डा.गुरु ने जो कहा है उसीका उद्धरण मेरे विचार से पर्याप्त होगा । डॉ.गुरु के अनुसार -

"(Thus, in 1921 , like all other parts in India , Sambalpur

also began to play an important role in the Non-Cooperation Movement (Page-17 The Guru and the Mahatma")

... ...नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन तथा सिंहभूम जिला चक्रधर पुर में अनुष्ठित उत्कल सम्मेलन के अन्तिम सत्र में शामिल होकर संबलपुर के तीनों नेता **धरणीधर मिश्र, चन्द्रशेखर बाहेरा और दाशरथि मिश्र** (१९२१ , १ जनवरी) सम्बलपुर आए । धरणीधर मिश्रजी के साथ उनके नाती छात्रनेता **जगन्नाथ मिश्र** थे। एक के बाद एक जातीय सम्मेलनों मे सम्मिलित होने के कारण भावबोध, विचार विमर्श से उद्बुद्ध जगन्नाथ के मन में अपूर्व उत्साह उन्मादना थी । घर पहुंच कर भी उन्होंने देर रात तक पितामह धरणीधर और रामनारायण के साथ चर्चा की थी। दूसरे दिन, जनवरी २ की सुबह वे नृसिंह गुरु समेत अपने अन्य सहाध्यायियों से मिलने आये। यह संयोग भी लक्षणीय है कि २ जनवरी की तिथि गुरुजी की पुण्य तिथि है । उन्होने मित्रों के साथ वार्त्तालाप के दौरान कांग्रेस तथा उत्कल सम्मलनों में अपनी अभिज्ञता बखानते समय उतावले, विचलित-से लगते थे । उन्होंने तय किया कि उसी दिन छात्रों की एक आम सभा होगी और भारतीय उपस्थित राजनैतिक स्थिति तथा आजादी की लड़ाई के प्रसंगों पर चर्च्चा होगी । उस दिन रविबार की छुट्टी थी । वह सभा उसी दिन संध्या के समय बूढ़ारजा पहाड़ की तलहट्टी में अनुष्ठित हुई । प्रो.डॉ.गुरु , डॉ.साहूजी के प्रदत्त विवरणों को आगे बढ़ाते-से लिखते हैं -

... ...These students of Class IX of Sambalpur Zilla School were so moved by what thay heard from Jagannath Mishra that they immediately decided to have a meeting of the students of Zilla School. Accordingly thay met at the foot of Budharaja Hill in the evening of 2nd January 1921 which was a Sunday. Though it was a Sunday the enthusiasm of this group of students was so great that they could easily collect about two hundred students These students, in conformity of the programmes contained in the Non-Cooperation Movement ,decided to boycott their classes in Zilla School the next day i.e. the 3rd January 1921. And on 3rd January when the school re-opened after Christmas holidays , more than two hundred students under the leadership of **Nrusingha Guru** boycotted their classes . Towards evening they came in a procession to *Balibandha* near the *Somanath temple* and held a meeting . The meeting of the students was addressed

by leaders like Chandrasekhar Behera,, Dasarathi Mishra and Janardan Supakar . It was decided in this meeting that the students would not join Zilla School again as it was run by the British Government . In this same meeting it was also decided that a National School like Kashi Vidyapith or Bihar Vidyapith would also be set up at Sambalpur for these students .

प्रो.डॉ.गुरु आगे कहते हैं - '' विद्यार्थियों के विद्यालय वर्जन के समय सम्बलपुर के अनेक वकीलों ने भी अंग्रेज शासित और परिचालित अदालतों का वर्जन किया था, तथा कतिपय सरकारी दफ्तरों के कार्यकर्त्ताओं ने पदों से इस्तीफा देकर विद्रोह का समर्थन किया था ।

सम्बलपुर जिला स्कूल के छोत्रों के द्वारा उस विद्यालय वर्जन की घटना भारत भर में आद्य घटना थी । उस समाचर को प्रमुख मान्यता देकर भारत के अनके जातीय अखबारों ने प्रज्ञापित किय था । कोलकाता से उस समय प्रकाशित होने वाला अंग्रेजी अखबार " The Servant " के सम्पादक **श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती** ने विद्यार्थियों के उस अपूर्व साहसिक पदक्षेप की उच्छ्वसित प्रशंसा की थी । उस समय **गोपबन्धु दास** कटक स्थित सत्यवादी मेस में थे । उन्होंने चल कर मेस के अन्तेवासियों से कहा - आज मुझे चिट्ठी के जरिये खबर मिली है कि सुदूर सम्बलपुर में छात्रों ने विद्यालय वर्जन के उपरान्त शहर में हड़ताल किया है । आप लोग यदि निष्क्रिय उदासीनता में सोये रहेंगे तो आनेवाला कल आपको माफ नहीं करेगा ।

४ जनवरी १९२१ को छात्रों ने सम्बलपुर में शान्तिपूर्ण हड़ताल के लिए आह्वान की प्रतिक्रियास्वरूप अकल्पित सफलता मिली थी । पूर्णत: दूकान बाजार बन्द रहे । उस सफलता के कारण विद्यार्थी अधिक से अधिक उद्‌बुद्ध उत्साहित हुए । उन्हीके आदर्श से अनुप्रेरित हो जिला भर के विभिन्न क्षेत्रों में युवानेता गण सचेत हो कर आन्दोलन के क्षेत्र विस्तार करने लगे, पश्चिम ओड़िशा में विद्रोह व्यापक हुआ । उन युवानेताओं में बरगड़ के **चतुर्भुज शर्मा**, अताबिरा के **दफ्तरी नायक** , कुचिण्डा के **दाशरथि मिश्र** , भेड़ेन के **घनश्याम पाणिग्राही** , पद्मपुर के **हजारी पटेल**, लाइकेरा के **रत्नाकर पटेल** आदि के नाम उल्लेखनीय है । इस तरह से थोड़े ही दिनों में पश्चिम ओड़िशा के कोने कोने में असहयोग आन्दोलन की अग्निशिखा की आभा फैलने लगी । उस समय **नृसिंह गुरुजी** के समेत सम्बलपुर के छात्र नेतागण योजनाबद्धता में अनुशासित

कार्यक्रमों के अनुसार विभिन्न गांवों मे पहुंच कर लोगों से मिलकर युवावर्ग में उत्साह की तेजस्विता को और और तेज करते रहे ।

स्व.गुरुजी के वाल्यकाल और वंश परिचय देना आन्दोलनात्मक आगे की सूचना, संस्कारात्मक, सांगठनिक कार्य प्रक्रिया, सहभागिता आदि के विवरण विवृत करने के पूर्व उचित होगा मानता हूँ । क्यों कि, पारिवरिक स्थिति, संस्कार, अनुशासन की श्रृंखला, धीरता, अभाव अस्वच्छलता में भी परितोष की सन्तुष्टि आदि की आद्य भित्तिभुमि एक तरह से जीवन में मौलिक परिच्छन्न चारित्रिक विकास और सत्यनिष्ठ संघर्षशीलता, दम्भ तता आत्मविश्वास की आधारशिला होती है । मेरी उपलब्धि में काल, तारीख,क्षेत्र, स्थिति, परिवेश आदि की भिन्नता के बावजूद लगता है गुरुजी तथा गांधीवादी विचार के एक निष्ठ अनुयायी सत्य न्याय सत् आदर्शों के आराधक योगी भारत के प्रधानमंत्री **लाल बहादुर शास्त्रीजी** के बाल्यकाल में भाव-निकटता अधिक है । जिसे विद्वान पाठकगण बाँचते समय अपने आप जाँच कर लेंगे । यह मेरी आस्था है ।

मैंने जिक्र किया था उस दिनका, जिस दिन (२.१०,१९८२) मैंने गांधी जयन्ती के अवसर पर पश्चिम ओड़िशा के परम वन्दनीय गांधीजी को देखा । वह तिथि लाल बहादुर शास्त्रीजी की भी जन्म तिथि है । मेरे विचार विवरण के आधार है पूर्व उल्लिखित वे तीन ओड़िआ, हिन्दी और अंग्रेजी के ग्रंथ तथा स्मारिकाओं से प्राप्त सूचना। यह गुरुजी के महान व्यक्तित्व के आकलन में मेरा वैचारिक और रचनात्मक प्रयास नहीं है , क्यों कि आकाश की ऊँचायी, सागर की गहरायी को नापने की सक्षमता मुझ में नहीं है , न मुझ में वह हिम्मत ही है । अत: मैं मेरे इस प्रयास को देवदर्शन की अभिलाषा मानता हूँ । अत: विज्ञ पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे मेरी इस सारस्वत रचना प्रयास को तार्किक दृष्टिकोण से न लेकर मेरे साथसाथ चलें ताकि हम सब एकात्मता में आदर्श पुरुष को, जैसे वे मेरे मनमंदिर में विराजित होकर हैं, उसी रूप में देखेंगे । विचारें तो यह पुस्तक शेष रचना नहीं है । आगे चलकर विद्वान तथा समर्थ पुरुषों की और भी रचनाएँ सामने आएँगी। ...

...सम्बलपुर के चौहान राजाओं के आमंत्रणक्रम में जो विद्वान विशारद ब्राह्मणों के परिवार आए थे, वे पुरी तथा गंजाम से आये थे । अपने क्षेत्रों में शिक्षा तथा सांस्कृतिक विकास को उत्तरित करने की अभिलाषा से राजाओं में वदान्य पृष्ठपोषकता के लिए कोई कुण्ठा नहीं थी । उसी प्रक्रिया के अन्तर्गत अठारहवीं सदी के मध्यकाल में **राजा अजित**

सिंह के सनय संबलपुर आए । अजित सिंह ने सम्बलपुर की उत्तर दिशा में अनति दूर ही एक ब्राह्मण शासन की प्रतिष्ठा की । राजा के नामानुसार वह है **अजितपुर** शासन। १९६१ तक की जनगणना में यही नाम दर्ज है । पर अब उसे जनसाधारण शासन के नाम से जानते है , वहां उसी शासन नाम से रेल स्टेशन भी है। यह शासन के रूप में विदित गांव ब्राह्मणों को दान के रूप में राजा के द्वारा प्रदत्त या बसाये गये ग्राम, निष्कर याने मुआफी मालगुजारी (लगान,राजस्व) के गांव होते हैं । इन शासनों को अग्रहार भी कहाजाता है । अग्रहार एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है विभिन्न राजाओं के द्वारा ब्राह्मणों को प्रदत्त निष्कर गांव। यह एक आवहमान काल से विदित भारतीय परंपरा है । इन गांवों के निवासी संस्कृत, कर्मकाण्ड, विविध न्यायशास्त्र, संहिता, आयुर्वेद , ज्योतिष आदि में पारंगत होने के साथ साथ क्षेत्रीय शिक्षा तथा पौरोहित्य और दरवारी ब्राह्मण प्रतिनिधि भी कहलाते थे। इस प्रसंग में अधिक चर्च्चा यहां अनावश्यक है क्यों कि वह एक तो एक अति विस्तृत प्रसंग है , दुजे मूलत: समान होने पर भी अलगअलग राज्यों के राजाओं के द्वारा प्रचलित विधिओं में भी कहीं कही असमानता देखी जा सकती है ।

इस प्रसंग के उपस्थापन तथा आगे श्रीक्षेत्र पुरी में श्रीजगन्नाथ कैद्रिक पण्डितों का चयन तथा खोरधा-पुरी के गजपति महाराजाओं के द्वारा प्रतिष्ठित शासनों के बारे में सम्यक् चर्च्चा की अभिलाषा से मैं यही कहना चाहता हूँ कि पूज्य गुरुजी जिस परिवार के वंशज थे वह एक सुप्रतिष्ठित शास्त्रज्ञ विद्वानों का परिवार और पारंपरिक आदर सम्मान सहित धार्मिक विधियों के और शिक्षा-प्रशिक्षण को अनुशासित करने के योग्य अधिकारी के रूप में मान्यता मिली थी ।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मान्यता तथा पारंपरिकता के प्रतिपादन हेतु मैं इस संदर्भ में कुछ कहना चाहूँगा । आशा है इस उल्लेख को प्रबुद्ध पाठकगण अप्रासंगिक न मान कर उसे सांस्कृतिक सूचना के रूप में लेंगे। प्रो.गिरिधारी प्रसाद गुरुजी ने सही उल्लेख किया है कि उत्कलीय ब्राह्मण जो पश्चिम ओड़िशा में गुरु, रायगुरु या राजगुरु संज्ञाधारी है उन्होंने पुरी से तत्कालीन पाटना रजवाड़े में चौदहवीं पन्द्रहवी सदी में चौहान राजाओं के द्वारा आमंत्रित हो पदार्पण किया था। उनकी मूल संज्ञा ''मिश्र '' थी । किन्तु, वे बाद में गुरुपदाधिष्ठित हुए यहां तक कि न केवल राजपुरोहित, सभा पण्डित, दीक्षादाता गुरु भी हुआ करते थे । ये ब्राह्मण उत्कलीय हैं , यजुर्वेदान्तर्गत विभिन्न शाखा के। सोनपुर, सम्बलपुर आदि में बसे वे गुरु या रायगुरुओं के वंशज भी उसी संज्ञा से

परिचित हुए।

किन्तु , उत्कलीय श्रीक्षेत्र मुक्ति मण्डप में अधिष्ठित षोलह शासनों के प्रतिनिधि ब्राह्मण जो रायगुरु पदाभिषिक्त होते थे केवल वे ही उस संज्ञा से परिचित होते । आगे किसी वंशज को वह अधिकार प्राप्त नहीं होता । उत्तराधिकार के सूत्र में यदि उनका ज्येष्ठपुत्र पाण्डित्य विद्वत्ता में समर्थ होता तो वह रायगुरु पदाभिषिक्त होकर रायगुरु कहलाता था। **दिव्यसिंहपुर** षोलह शासनों में एक प्रमुख शासन है । उस शासन की भूमिका **श्रीजगन्नाथ** और **खोरधा** गजपतियों के गुरुपदाधिकारी के प्रसंग में महत्वपूर्ण है। सन्निकटस्थ **माणिकागोड़ा** ग्राम के अधिवासी सिंहभाग, लगभग ८० प्रतिशत मुसलमान हैं । अपूर्व भाइचारे में बंधे हुए। **चन्द्रचोर रायगुरु** के नाम से ख्यात **श्रीपति रायगुरु** से लेकर मेरे पितामह **कपिल रायगुरु** तक सम्मानीय राजगुरु पदाधिकारी थे। पूर्वजों में **लक्ष्मी परम गुरु, गोदावरी बर्द्धन रायगुरु** आदि अलौकिक शाक्त वैदिक साधकों की गाथाएँ हैं । **सुरेन्द्र महान्ति** ने *नीलशैल* उपन्यास में उन रायगुरुओं की भूमिका का स्मरण किया है । किन्तु , कपिल रायगुरु के पश्चात मेरे पिताजी **श्रीधर उद्गाता** गोपबन्धु के सहयोगी के रूप में *सत्यबादी*, *डेलांग* में रहकर , खादी के कपड़े रंगाने के लिए विशेष अध्ययन के लिए शान्तिनिकेतन कला विभाग के छात्र थे । उत्कल भूमि में गांधीजी की पदयात्रा की अगुआनी की , गोपबन्धु की वीलनामा तत्कालीन वाक्कील **जानकी बोष** (नेताजी के पिताश्री) के श्रुतलेक के अनुसार लेखन कार्य सम्पन्न किया था । वे राजगुरु होते तो उनकी संज्ञा भी रायगुरु होती और तत्पश्चात उत्तराधिकार से मेरी संज्ञा भी वही होती । परन्तु वह परम्परा गजपति महाराजाओं के राजगुरुओं के लिये नहीं है कि आनेवाली पीढ़ी भी उसी रायगुरु के रूप में परिचित हो । **बलांगीर** में राज निमंत्रण तथा पौरोहित्य स्वीकर करके जो विद्वान वर्ग आकर बलांगिर के अधिवासी बने और संस्कृत साहित्य, कर्मकाण्ड, ज्योतिष आदि अध्यापन की भूमिका निभायी उन में किसी एक ने भी राजपुरोहित होकर भी रायगुरु नहीं कहलाया। मेरे अग्रज तथा शिक्षागुरु **प्रो गोविन्दचन्द्र उद्गाता**, उसी मूल संज्ञा में परिचित हुए । हम सामवेद के वशिष्ठ मित्रावरुण कौण्डन्य गोत्र के हैं । अब भी जो दिव्यसिंहपुर में हैं वे ओता कहलाते हैं । ओता '' उद्गाता '' का अपभ्रष्य है । सामवेदान्तर्गत उद्गीथों का गायन करनेवाले उद्गाता कहलाते हैं।

आपातत: विवरण में साम्यता बरतते-से प्रो.साहू , प्रो. गुरु और प्रो.दासजी ने

सम्माननीय नृसिंह गुरुजी के **वंशपरिचय** और वाल्यकाल के संबन्ध में जो कहा है , उसका निष्कर्ष है - '' सम्बलपुर के राजा **छत्र साए** ने शासन के समीप दान सूत्र में प्रदान किया था। वह दान था *दलगुड़ि* के उद्देश्य से वह दानार्पण । (दल अर्थात् समूह , गुट , और गुड़ि एक कोसलि शब्द है जिसका अर्थ है - मंदिर) । ऐतिहासिक **रामचन्द्र मल्लिक** '' *संक्षिप्त कोशल इतिहास* में कहते हैं - शासन के निकट ही **षण्ढासिंहा** नाम से एक आदिवासी गांव है। (मल्लिक महोदय ने ''दण्डासिंहा ''कहा है) ।''दण्डसेना'' जात के कैवर्त्त हैं। नागपुर राजा के आधीन नौविभाग में काम करते समय उन्हें यह वंशीय पदवी मिली थी। सम्बलपुर में राजा **बलीयार सिंह** के समय किसी बजह से नागपुर तज कर ये लोग सपरिवार आकर सम्बलपुर में बस गये । उनकी एक सुन्दर-सी कन्या थी । बलीयार सिंह के पुत्र **रतन सिंह** ने उसी से प्रेम विवाह किया । **गोपाल दण्डसेना** सम्बलपुर सेना के नौ विभाग में नियुक्ति मिली तो नागपुर से उनके अन्य स्वजन भी आगये । उनका एक दल था । उन्हों ने सम्बलपुर में **समलेश्वरी मंदिर** की उत्तरी दिशा में '' **दलगुड़ि** '' नाम से एक छोटा-सा मंदिर बनवा कर वहां नागदेवता की मृण्मय प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी । सम्बलपुर के राजा छत्र साए ने उसी दलगुड़ि के उद्देश्य से शासन निकटस्थ षण्ढासिंहा का दान किया था ।

किन्तु, पता नहीं राजा **जयन्त सिंह** उनके प्रति नाराजगी के कारण दानपत्र रद्द करके प्रतिग्रहण करके शासन के गुरु परिवार को प्रदान किया था । अब भी गोपाल दण्डसेना के वंशज सम्बलपुर के महानदी तटस्थ कुंजेलपड़ा में निवास करते हैं और षण्ढासिंहा गुरु परिवार के अधिकार में है । दण्डासिंहा नामकरण अधिक यौक्तिक है। हो सकता है अपभ्रष्ट हो कर षण्ढासिंहा बना हो ।

शासन में गुरु परिवार धीरे धीरे बढ़ने लगा तो **उन्नीसवीं सदी** के मध्यभाग में इस परिवार के बँटवारे में **काशीनाथ गुरु** ने षण्ढासिंहा को अंश के रूप में लेकर गांव के उपान्त में गृह निर्माण करके **पत्नी राधादेवी** के साथ पैतृक घर से चले आए । उन्ही के आमंत्रण से आसपास के ब्राह्मण युवावर्ग मुक्त प्रान्तर पर आवास बनाकर निवास करने लगे । उसी तरह से क्रमश: ब्राह्मण-गांव '' **गुरुपाली**'' बस गया और काशीनाथ दानों गांवों के गौन्तिआ (मुखिया) बने । यहीं उनकी एकमात्र पुत्र संतान **गणेशराम** का जन्म हुआ था। काशीनाथ ने एक पाठशाला की स्थापना की और दोनों गंवों के बच्चों को पढ़ाने लगे । गणेश राम भी अपनी कौलिक वृत्ति के साथसाथ चाटशाली (पाठशाला) की

अध्यापकी (शिक्षकता) करने लगे । उनसे **अताबिरा** निकटस्थ सरण्डा गांव के **जगदीश होता** की कन्या **लक्ष्मी देवी** का विवाह हुआ था । जगदीश होता के पूर्वज सम्बलपुर के होता पाड़ा (मोहल्ला) में रहते थे । **राजा अभय सिंह** के समय (सन.१७७०) उसी मोहल्ले के ब्राह्मणों ने लोगों से चन्दा अनुदान लेकर होतापड़ा में जगन्नाथ मंदिर का निर्माण किया था जिससे उनकी ख्याति बढ़ी और सरण्डा के ब्राह्मण गौन्त्या ने उन्हें आमंत्रित करके अपनी चाटशाला में अवधान (अध्यापक) के रूप में नियुक्त किया था। उसी परिवार में जगदीश का जन्म हुआ था , जिनकी कन्या लक्ष्मी गुरुपालि गणेशराम की पत्नी हैं।

विवाह के पश्चात वर्षों तक वे नि:सन्तान थे । सन. १९०१, वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन गणेशराम की माता राधादेवी पुत्र-पुत्रवधू को साथ लेकर **विड़ाल नृसिंह** के वार्षिक मेला महोत्सव देखने के लिए पाइकमाल **नृसिंहनाथ** पहुंची । पूजा आरती के समय उन्होंने प्रभु से नाती के लिए प्रार्थना की थी । उनकी आतुर प्रार्थना सार्थक हुई और **१९०२ मार्च २४** तारीख **फाल्गुन पूर्णिमा** सोमबार के दिन पुत्ररत्न प्राप्त होकर लक्ष्मीदेवी-गणेशराम माता-पिता बने तो राधादेवी ने सन्तान को '' **नृसिंह** '' नाम से नामित कर दिया । दो तीन सालों के बाद द्वितीय पुत्र **दुर्गाप्रसाद** का जन्म हुआ ।

सन १९०९ श्रीपंचमी के दिन बालक नृसिंह का विद्यारंभ हुआ जब वे सातसाल के थे और माता-पिता की निगरानी में वर्ण परिचय के साथसाथ **भागवत** , **मथुरामंगल** , **दाढ्यताभक्ति** आदि धर्मग्रंथों का पाठ करने लगे । घर पर नित्य संध्या के समय भागवत और अन्य पुराणों का पाठ होता था और वे स्वयं क्रमश: पाठकरने लगे । माता-पिता की सरलता और भगवत् प्रेम से वे प्रभावित होने लगे। उसके बाद निम्न प्राथमिक विद्यालय में दाखिला के लिए जब पुत्र को लेकर शासन के विद्यालय में पहुंचे तो स्कूल के प्रधान शिक्षक **सागर पाढ़ी** जी लड़के की पूर्व तैयारी के बारे में जानने की इच्छा से कुछेक सवाल करने लगे और बालक नृसिंह के उत्तर से प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार स्वरूप तांबे के दो सिक्के दिये। किन्तु, स्कूल में प्रधान शिक्षक और गुरुओं से स्नेह , उत्साह , प्रेरणा के बावजूद उनका विद्यालय के प्रति लगाव नहीं रहा । कारण वह था कि विद्यालय गुरुपालि से लगभग तीन किलोमिटर की दूरी पर था और रस्ता छोटे बच्चों के लिए निरापद नहीं था । पाठ्यक्रम के अन्तर्गत बगीचे में काम, ड्रील आदि जो थे उसे निबटा कर लौटने में देर होजाती थी । उस जनहीन सड़क से लौटते समय नृसिंह

डरा भी करते थे। उनकी पढ़ाई पर से लगन ही टूटने लगी तो वे घर पर रह कर पिता के कामों में हाथ बटाना चाहा । पर पिताजी में उनकी ऊँची पढ़ाई की चाह थी। उस समय प्राथमिक शिक्षा तक की प्रशासनिक वाध्यता थी। जो बच्चों को पढ़ने भेजते नहीं थे तहसीलदार जबाव तलब भी करते और उसके लिए दण्ड विधान भी था । अत: पिता गणेशराम में वह कानूनी डर भी था ।

उस समय सरण्डा में उनके श्वशुर निम्न प्राथमिक विद्यालय में प्रधान शिक्षक थे। उन्होंने बेटी-दामाद की समस्या सुलझाने के लिए और नृसिंह को पढ़ाने के खातिर साथ ले आए और मातामह की निगरानी में पढ़ कर कुशाग्र बुद्धि के नृसिंह एक ही साल में डबल प्रमोशन पाकर तसिरी कक्षा के छात्र बने । चौथी की वृत्ति परीक्षा के लिए गुरुजी बरगड़ आए। वहां रेमेण्डा भर्णाकुलर स्कूल के प्रधान शिक्षक **स्वप्नेश्वर दाशजी** परीक्षार्थी विद्यार्थियों के साथ आकर बरगड़ के दोरा धर्मशाला में ठहरे हुए थे । जगदीश होता जी के अनुरोध करने पर नसिंह को कुछ दिन अपने पास रख कर मार्गदर्शी बने । स्वप्नेश्वर दाश महोदय की स्नेहशीलता और पाण्डित्य से गुरुजी बचपन ही से प्रभावित हुए थे और उन्हें अन्त तक अपना गुरु माना। बाद में सम्बलपुर में दाशजी और गुरुजी में सान्निध्य संबन्ध निविड़ हुआ था । वृत्ति परीक्षा के तुरत बाद नृसिंह के उपनयन संस्कार हुए और उस के उपरान्त वे परीक्षा में उत्तीर्ण होकर, वृत्तिलाभ करके पट्टनायक पड़ा मध्य अंग्रेजी विद्यालय के छात्र बने।

उस समय (१९४४ के पहले) शिक्षा वर्ष का आरम्भ जनवरी से होता था अब जुलाई से शुरु होता है। अत: परिणाम की घोषणा दिसम्बर के पहले हो जाती थी। १९०५ में जब सम्बलपुर ओड़िशा से सम्मिलित हुआ, तब तक सम्बलपुर में कोई मध्य अंग्रेजी विद्यालय नहीं था । अंग्रेजी अध्ययन के लिए जिला स्कूल ही एकमात्र संस्था थी। तब एम्.भी अर्थात् मिड़िल वर्णाकुलर स्कुल छ ही थे सम्बलपुर भर में। वे हैं बरगड़, बरपालि, रेमेण्डा, रम्पेला, टांपरसरा और एक सम्बलपुर पट्टनायक पड़ा में। १९०८ में पट्टनायक पड़ा एम.भी स्कूल को मध्य अंग्रेजी विद्यालय की मान्यता मिली। धीरे धीरे और पांचों को भी । सन.१९१४ जनवरी में नृसिंह गुरु **पट्टनायक पड़ा स्कूल** के छात्र हुए । तब जिला स्कूल ही एकमात्र उच्च अंग्रेजी विद्यालय था। पट्टनायक पड़ा स्कूल के प्रधान शिक्षक **पूर्णचन्द दास** तथा **पण्डित वृन्दावन दानीजी** के आदर्श जीवन व व्यक्तित्व से गुरुजी बेहद प्रभावित हुए थे । विद्यालय मे दाखिला के उपरान्त

गुरुजी पहले फ्रेजर प्रेस के पास विम्बाधर मिश्रजी के अभिभावकत्व में रहने लगे। मिश्रजी के सम्पादन में '' उत्कल सेवक '' नामसे पत्रिका उसी मुद्रणालय में छपा करती थी। मिश्रजी के पास अनेक पुरातन अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ संग्रहीत थीं । गुरुजी उन्हें चाव से पढ़ा करते थे । वही उनमें पत्रकारिता के प्रति रुझान और आधारभूमि बनी। पहले ही से सरण्डा में मातामह जगदीश होता जी ''**सम्बलपुर हितैषिणी** '' के नियमित सदस्य थे । उस पत्र के लिए शुरुसे ही गुरुजी के मन में आग्रह था और अगला अंक कब आए, उसके वास्ते वे बाट जोहते रहते थे । परवर्ती काल में उसी अनुप्रेरक आसक्ति ने उन में देशप्रेम जगाया था । वे उसी अनुप्रेरणा से उद्‌बुद्ध होकर पत्रकारिता को पेशे के रूप में अपनाया ।

विम्बाधर जी के वहाँ थोड़े ही दिनों के लिए रह कर गुरुजी छात्रावास में रहने आये । प्रधान शिक्षक ने उनके लिए मेस में नि:शुल्क व्यवस्था करदी थी । विद्यालय का शुल्क भी उन्हें देना नहीं पड़ता था । ऊपर से उन्हें वृत्ति के रूप में महीने में पाँच रूपये मिल जाया करते थे । अत: पढ़ाई के लिए उन्हें घर पर बोझ बनना नहीं पड़ा। वे पट्टनायक पड़ा स्कूल से वृत्तिलाभ करके उत्तीर्ण हुए थे । जिला स्कूल की आठवीं कक्षा में दाखिला लेकर वे वृत्तिधारी विद्यार्थी के रूप में पढ़ने लगे । जो आर्थिक सुविधा उन्हें मध्य अंग्रेजी स्कूल में प्राप्त थी वही बरकरार रही और वे पढ़ाई में एकाग्र हो जुटे रहे । उस समय वृत्तिधारी छात्रों को स्कूल फीस तक देना नहीं पड़ता था और गरीब ब्राह्मण विद्यार्थियों के लिए मेस में अनेक नि:शुल्क व्यवस्थाएँ भी थी ।

उस समय जिला स्कूल छात्रावास के अधीक्षक थे **कृष्णचन्द्र सेनगुप्त** । आदर्श पुरुष के रूपमें जनादृत और छात्रस्नेही बहुदर्शी विद्वान शिक्षक। गुरुजी ने उन महानुभावों से राजनीति तथा आध्यात्मिक प्रसंगों पर बहुत कुछ जाना ,सुना और सीखा भी। निबंध प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए सेनगुप्ता जी उन्हें बराबर प्रेरित करते थे।

गुरुजी के आठवी में आने के पहले ही पिताजी ने उनका **विवाह** सारंगगड़ निवासी **बलाराम मिश्र** की कन्या **प्रियवती** से तय कर लिया था । उस समय नैष्ठिक परिवारों में वाल्यविवाह एक पारंपरिक घटना थी । कभीकभी तो शैशव काल ही में निर्बन्ध सम्पन्न होजाता था । इस विवाह को ''**पत्रपेण्डि**'' कहते हैं । वरपिता कन्या के घर में एक गुच्छ ''**सर्गीपत्र** '' (शाल पत्र) रख आते है । उसी से यह प्रथा पत्रपेण्डि के रूप में विदित है । कन्या की वयप्राप्ति के पश्चात द्वितीय विवाह या वन्दापना (उत्तर

भारतीय प्रान्तों में कथित गौना) उत्सव के रूप में मनाया जाता था । वह गौना १९२२ में सम्पन्न हुआ जब गुरुजी २२ साल के थे । तब तक गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रत्याहार कर लिया था । गुरुजी ने भी आगे न पढ़ कर देश सेवा के लिए अपने को समर्पित करने का निर्णय ले लिया था । गुरुजी अपने विद्यार्थी जीवन में ऐसे कुछेक महामनिषियों के संस्पर्श में आये थे , जिन के आदर्श-प्रभावित होकर उन्होंने वह पथ चुन लिया था । उन महापुरुषों में **धरणीधर मिश्र , स्वप्नेश्वर दाश** और **चन्दरशेखर बेहेरा** प्रमुख थे ।

सम्बलपुर के सर्वप्रथम मैट्रिक उत्तीर्णित विद्यार्थी हैं **धरणीधर मिश्र** । जैसे बलांगीर के **स्व. रविचन्द्र साए** । आप बलांगीर के प्रथम मैट्रिक्युलेट है । साए जी १८९८ इस्वी में पटना विश्वविद्यालय से मैट्रिक्युलेसन में अब्बल आए थे। उस सफलता के कारण पाटनास्टेट, राजा-प्रजा सभी प्रमुदित हुए तथा राज्य की और से साए जी को सम्बलपुर से हाथी पर बिठला कर बाजेगाजे से अभिनन्दित करते हुए लाकर स्वागत संवर्धना की व्यवस्था हुई थी। मिश्रजी ने सम्बलपुर में *भाषा आन्दोलन* का नेतृत्व लिया था। बाद में वानप्रस्थी धरणीधर के रूप में सम्बलपुर के सभी वर्गों मे विदित और आदर्शपुरुष के रूपमें वन्दनीय हुए । उनके ज्येष्ठपुत्र **रामनारायण मिश्र** एक प्रवीण वकील और देशप्रेमी नेता थे । उन्ही के पुत्र **जगन्नाथ** गुरुजी के सहाध्यायी थे । जगन्नाथ भी एक मेधावी छात्र थे ,अत: गरुजी सहित उनकी अन्तरंग आत्मीयता थी । गुरुजी उनके घर आते-जाते थे , कभी कभार भोजन भी करते थे । धरणीधर और रामनारायण दोनों में गुरुजी के प्रति आत्मीय समान प्यार था । धरणीधर के द्वारा प्रणीत सटीक एकादश स्कन्ध, तत्वबोधतथा आत्मबोध पुस्तक त्रयी गुरुजी को उनसे उपहारस्वरूप मिली थी। उन्ही ग्रंथों से गुरुजी को अध्यात्म दिशा में अनुप्रेरणा मिली थी । १९१६ में मिश्रजी ने जातीय जागरण हेतु मिश्र प्रेस की स्थापना की । १९२१ में इसी प्रेस से **नीलकण्ठ दासजी** की ''*सेवा*'' पत्रिका का मुद्रण हुआ था । १९२० में आप पौत्र जगन्नाथ को साथ लेकर नागपुर के कॉंग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे ; चक्रधरपुर के उत्कल सम्मिलनी के अधिवेशन में भी । फलस्वरूप आपने पौत्र के माध्यम से छात्र संगठन किया और वह संगठनात्मक प्रक्रिया जल्द ही आन्दोलन में रूपान्वित होगयी । इस आन्दोलन से गुरुजी की जीवन धारा भी समीचीन दिशा में मुड़ी थी । **स्व. कविभूषण स्वप्नेश्वर दाशजी** गुरुजी के विद्यार्थी जीवन में एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शी थे । दाशजी के उपदेश से

ही गुरुजी ने बरगड़ मध्य अंग्रेजी विद्यालय या सम्बलपुर जिला स्कूल के बदले पट्टनायक पड़ा मध्य अंग्रेजी विद्यालय में दाखिला ली थी ।

स्वप्नेश्वर दाश जी रेमेण्डा से स्थानान्तरित होकर १९१४ में सम्बलपुर आए। उनके सम्बलपुर में रहते समय वे गुरुजी को बुलाया करते थे । उनकी पढ़ाई की जानकारी लेते परामर्श देते और समयसमय पर आर्थिक सहायता भी दिया करते थे। १९१५ में उत्कल सम्मेलन के अवसर पर स्वप्नेश्वर दाशजी के उद्बोधिनी सम्भाषण से गुरुजी प्रभावित हुए थे । । दाशजी १९१९ में ''हीराखण्ड'' और १९२१ से ''साधना'' पत्रिका का सम्पादन एक साथ करते थे। उनके सम्पादकीय एक तरह से गुरुजी के लिए प्रशिक्षण समान होते थे ।

सम्बलपुर में उस समय के प्रिय नेता चन्द्रशेखर बेहेरा की गुरुजी के प्रति सदयता थी । समय समय पर वे उनकी मदद करते थे । गुरुजी भी उनके आदर्श से अनुप्राणित थे । जब उन्होंने पट्टनायक पड़ा मध्य अंग्रेजी विद्यालय में दाखिला ली तब बेहरा जी पौरसभा के अध्यक्ष थे और विद्यालय भी पौर परिषद के द्वरा परिचालित एक अनुष्ठान था। १९०२ से १९२५ तक लगातार बेहरा जी पौरसभा के सदस्य के रूप में चुने गये थे । १९११ से १९१४ तक आपने पौरसभा में अध्यक्ष पदभार सँभाला था । अत: पौर परिषद पर उनका अखण्ड प्रभाव था । १९१० में पट्टनायक पड़ा स्कूल एक एम.भी. स्कूल ही था । उन्होंने स्कूल को मध्य अंग्रेजी विद्यालय की मान्यता देने की मांग की और वह प्रस्ताव १९१० दिसम्बर २२ तारीख की वैठक में गृहीत नहीं हो पाया। परवर्त्ती अधिवेशन में उन्हींके जोर ही से १९११ को उसे मध्य अंग्रेजी स्कूल की मान्यता मिली । वह हुआ नहीं होता तो गुरुजी वहां पढ़ ही नहीं पाते। शायद बरगड़ में ही पढ़ते। उसी से उनकी जीवन धारा ही बदलगयी होती। गुरुजी बेहद उल्लसित हुए, जब १९१९ में बेहरा जी उत्कल सम्मेलन के पुरी अधिवेशन में सभापति के रूप में चुनेगये। सभापति अभिभाषण की एक प्रतिलिप पाकर उन्होंने उसे चाव से पढ़ा। उस अभिभाषण ने उन्हें देशप्रेम की भावना से सराबोर कर दिया।

उत्कल सम्मेलन, सम्बलपुर अधिवेशन के समय गुरुजी पट्टनायक पढ़ा मध्य अंग्रेजी विद्यालय के छात्र थे। विद्यालय के द्वितीय प्रधान शिक्षक **बृन्दावन** दानी ने छात्रों को लेकर एक स्वतंत्र सेवा दल का गठन किया था। गुरुजी उसी दल में शामिल होकर सम्बलपुर तथा बाहर से आए नेताओं के सख्य सान्निध्य से लाभान्वित हुए थे । एकाग्र मन से उन्होंने उनके सम्भाषण भी सुने। उसी अवसर पर उनकी **उत्कलमणि गोपबन्धु दास** से पहली भेंट भी हुई। उनके व्यक्तित्व और सौहार्द से अभिभूत होकर उसी दिन से उन्हें प्रिय नेता माना इसलिए जब जगन्नाथ मिश्र जी नागपुर और चक्रधर पुर से लौट कर विद्यार्थी मित्रों के आगे गांधीजी और गोपबन्धु दास के प्रस्ताव तथा आह्वान के बारे में बखानने लगे तो गुरुजी का तरुण मन में हलचल मचने लगा। वे अपने माता-पिता, पढ़ाई, अपने भविष्य को भूला कर गांधीजी के असहयोग आंदोलन की आग में कूद पड़े । ...

सम्बलपुर में जातीय विद्यालय

असहयोग आन्दालन की प्रेरणा से अनुप्रेरित हो विद्यार्थियों ने विद्यालय-वर्जन तो किया पर उनकी पढ़ाई तो जारी रखनी ही थी। उसी के खातिर सम्बलपुर के तुंग नेताओं ने सम्मिलित उद्यम से फ्रेजर क्लब गृह में जातीय विद्यालय की प्रतिष्ठा की। सर्व प्रथम **शंकरप्रसाद पाढ़ी, सयद अबदुल्ला** और **बलदेव बहिदार** ने अध्यापना का दायित्व सँभाला । उल्लेखनीय तो यह है कि गोपबन्धु के द्वारा प्रतिष्ठित **सत्यवादी विद्यालय** को जातीय विद्यालय की मान्यता मिलने के पूर्व सम्बलपुर में इस विद्यालय की प्रतिष्ठा हो पायी थी। एक और महत्वपूर्ण बात है कि, उस समय पण्डित नीलकण्ठ दास जी कोलकाता विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। उन्हीं के साथ सम्बलपुर के एक छात्र **भागीरथी मिश्र** रहते थे। सम्बलपुर में जातीय विद्यालय की प्रतिष्ठा के समाचार सुन पण्डित दास इस भांति प्रसन्न हुए की अपनी अध्यापकी से त्यागपत्र देकर उसी विद्यालय में शिक्षकता करने की इच्छा की। उन्होंने उसकी

खबर तार के जरिए गोपबन्धु तक भी पहुंचायी थी। १९२१ जनवरी १७ को प. नीलकण्ठ दास, गोपबन्धु दास और भागीरथि मिश्र जी सम्बलपुर आए। उनकी अभ्यर्थना सहित स्वागत करने के लिए अनेक जाने माने व्यक्ति स्टेसन में इकट्ठे हुए थे । भव्य स्वागत भी हुआ । उन्हें मोटर पर शहर में लेजाते समय घरों के आगे पूर्णकुंभ की स्थापना करके समवेत स्त्री-पुरुषों ने पुष्प-चन्दनादि से उनकी वन्दापना की थी। उस अभूतपूर्व अभ्यर्थना से वे अभिभूत हुए थे।

बीच में बलदेव बहिदार जी जातीय विद्यालय छोड़ कर चले गये। नीलकण्ठ दासजी प्रधान शिक्षक, उपप्रधान शिक्षक भागीरथि मिश्र ने पदभार संभाला। कुछ दिनों के बाद **अम्विका माधव प्रसाद पट्टनायक, बालमकुन्द मिश्र, अनन्तराम बेहेरा, विष्णुप्रसाद सिंह**, संस्कृत पण्डित के रूप में **शिवकुमार शास्त्रीजी**, हिन्दी पढ़ाने के लिए **कमल प्रसाद, भगवान प्रसाद रेवानी, नीलमणि महाकुड़**, व्यायाम शिक्षक **पर्शुराम साहाणी** आदि स्वत: प्रवृत्त होकर विद्यालय में शिक्षकता करने आए। वे सभी अवैतनिक काम करते थे। इनके अलावा बढ़ई के काम के लिए **जंगल मिस्त्री**, जो चरखे बनाया करते थे और कपड़े बूनने और काम सीखाने के लिए **गौरांग मेहेर** के साथ चारपाई की रस्सी बनाने का काम के लिए **गजराज** नाम से एक हरिजन भी नियुक्त हुए। बिहार पाटना इंजिनीयरिं स्कूल के दो विद्यार्थी ,**गणेश प्रसाद पाढ़ी** और **चक्रधर पण्डा** पढ़ाई छोड़ कर शिक्षकता करने आए । आज के इस वस्तुवादी जमाने में उस जैसी नि:स्वार्थ सेवा के लिए प्रतिबद्धता अकल्पनीय है। उस समय शिक्षकों की प्रेरणा से छात्रों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। जातीय विद्यालय फ्रेजर क्लब में और अब जहां लेडीलुईस बालिका विद्यालय है, वहां जिल्ला स्कूल था । **मधुसूदन दास** जी जिला स्कूल के **प्रधानाध्यापक** थे। वे जिला स्कूल के बरामदे पर खड़ेखड़े अपने स्कूल से जातीय विद्यालय को चले जाते छात्रों के नाम एक कागज पर बाद में पुलिस को खबर करते थे । जातीय विद्यालय के शिक्षक पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाया करते थे । बीच बीच में छात्रों को लेकर गांवों में कांग्रेस की नीति , कार्यक्रम के बारेमें समझाया करते थे । विद्यालय की अंतिम परीक्षा

की परिचालना स्वराज्य शिक्षा परिषद के द्वारा हुई थी । उस परिषद के अध्यक्ष थे गोपबन्धु दास और नन्दकिशोर दास संम्पादक थे । १८ जून १९२१ को गोपबन्धु दास विद्यालय परिदर्शन के लिए आए थे और काफी सन्तुष्ट भी हुए थे । प्रथम वर्ष उस विद्यालय से तीन विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए थे । वे हैं , **जगन्नाथ मिश्र** , **दामोदर पाढ़ी** और **अरुण कुमार दास** । असहयोग आन्दोलन में शिथिलता आयी तो वह विद्यालय बन्द हो गया । अत: अनेक विद्यार्थी जाकर सरकारी विद्यालय में दाखिला ले ली ।

सम्बलपुर जिला स्कूल में पढ़ते समय **कृतार्थ आचार्य** नृसिंह गुरु के अन्तरंग मित्र थे । आन्दोलन के कुछ ही समय पहले आचार्य जी पितृ-मातृहीन असहाय हो गये। भाई बहनों का बोझ भी उन पर था । वे उस समय सरकारी वृत्ति , मारवाड़ी समाज की वृत्ति और सोमनाथ दासजी से आर्थिक सहायता पाकर भाई बहनों का पालन करते थे। आन्दोलन में शामिल होने पर वह अर्थ-सहायता भी बन्द हो जाए, उसीका डर था। आचार्यजी गुरुजी से स्थिति की जानकारी देकर दुखड़ा सुनाते। गुरुजी उनके प्रति बेहद सहानुभूतिशील थे । कृतार्थजी आन्दोलन से दूर रहने पर भी सहपाठी मित्रों से अलग हुए नहीं थे ।

ओड़िशा में असहयोग आन्दोलन के सभी कार्यक्रम और योजनाएँ उत्कल कॉंग्रेस के नेतृत्व में परिचालित होना निश्चित हुआ था । परन्तु , विधिबद्ध रूप में गठित होने के पूर्व ही आन्दोलन बाढ़ की भांति प्रखर होने लगा तो स्थानीय नेतागण नेतृत्व लेकर मुश्किलों का हल किया, सामना किया । यह संशय भी होने लगा, कि कहीं स्थिति नियंत्रण के बाहर हो जाए। अत: अवसर मिलते ही **गोपबन्धु दास** उत्कल कांग्रेस की एक अस्थायी कमेटी बनायी । वे स्वयं सभापति , **अक्राम रसूल** उपसभापति , **भगीरथी महापात्र** सम्पादक तथा **ब्रजबन्धु दास** सहसम्पादक रहे । अलग जिलों में भी सांगठनिक कार्यक्रमों के लिए कुछेक दायित्वसम्पन्न व्यक्तियों पर भार सौंपा गया। पण्डित नीलकण्ठ दास जी सम्बलपुर में जातीय विद्यालय के साथसाथ सांगठनिक संचालन के लिए भी रहे । उन्हें सहायता करने एक और कमेटी बनी । बाद में जब जिला कांग्रेस कमेटी बनी उसमें सभापति के पद पर धरणीधर मिश्र , अंबिका माधव प्रसाद पट्टनायक सम्पादक बने ।

इसी अवधि में सम्बलपुर से '' उत्कल सेवक'' और ''साधना'' नाम से दो साप्ताहिक पत्रिकाएँ जातीय जागरण के लिए लेख निबन्धादि प्रकाशित करती थीं।

शंकर प्रसाद पाढ़ी ''उत्कल सेवक'' और स्वप्नेश्वर दास '' साधना '' के सम्पादक थे । इसके अलावा दासजी के सम्पादन में '' हीराखण्ड '' नाम से एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी । यह पत्रिका १९२१ इस्वी के प्रारंभ ही से प्रकाशित हुई । उन प्रकाशनों के बावजूद जिला कांग्रेस के मुखपत्र के रूपमें एक पत्रिका भी प्रकाशित हो , उसी निश्चय से **सेवा** प्रकाशित हुई , **पण्डित नीलकण्ठ दास** के सम्पादन में। प्रकाशन सहायक के रूप में आए नयागड़ के चन्द्रशेखर मिश्र , कटक महाविद्यालय परित्याग करके सम्बलपुर आए थे ।

ये सारे तो ऐतिहासिक विवरण है ; उन महापुरुषों में लाभ लोभ की कोई आशा होती, जागतिक पद प्रतिष्ठा के लिए स्वार्थी दुराग्रह होता तो ये लोग सब कुछ, सुख सम्पदा तज कर फकीर बन कर देश के लिए, मानवता के लिए पूर्णत: अपने को समर्पित करके आए नहीं होते । आज उस जैसी कोई भी स्थिति आए तो किसी भी तर्क से , विचार से , किसी भी क्षेत्र से जुड़े हुए एक को तलाशें तो शायद अनुभव यही होगा कि उनके पास सब कुछ है , सिवाय मानवता के।

महात्मा गांधीजी ने ओड़िशा का दौरा किया था , सन १९२१ मार्च के महीने में। वे आंध्र प्रदेश में जातीय कांग्रेस के बेजवाड़ा अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए ओड़िशा होते हुए यात्रा की थी। तब उन्हें सम्बलपुर लाने के प्रयास भी हुए और वे समयाभाव के कारण ही आ नहीं पाए। अत: सम्बलपुर से अनेक कार्यकर्त्ता और देशप्रेमी उनके दर्शन के लिए कटक और पुरी पहुंचे थे । १९२१ इस्वी मार्च २३ तारीख को गांधीजी कटक पहुंचे । विशाल शोभायात्रा में उन्हें कटक रेल स्टेसन से स्वराज आश्रम को लाया गया था । उस शोभायात्रा में बाहत्तर कीर्त्तनियों के दल थे । मार्च २७ तारीख , उसी दिन पुरी शरधाबालि पर आयोजित विशाल सभा को गांधीजी ने संबोधित किया था । उन्होंने कहा , महाप्रभु श्रीजगननाथ को विदेशी वस्त्रों के बदले खादी से विभूषित करना उचित होगा । जब ओड़िशा के विभिन्न क्षेत्रों में असहयोग आन्दोलन तेजीयान हो रहा था तब गांधीजी के उस परिदर्शन और सम्भाषण के कारण लोग अधिक से अधिक अनुप्रेरित और उन्मादित हुए थे। उसी से सम्बलपुर के नेतावर्ग लौट कर आन्दोलन को अधिक से अधिक व्यापक करने की चेष्टाएँ करने लगे ।

सन् १९२१ अप्रेल ६ से १३ तक सम्बलपुर में हड़ताल के लिए घोषणा हुई। दो साल पहले गांधीजी ने सन १९१९ अप्रेल ६ तारीख को **रौलट** कानून के

विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन के जरिए देश भरमें हड़ताल का आह्वान किया था । उसके पश्चात १ ३ अप्रेल को **जालियाँनाबाल बाग का नरसंहार** हुआ था। अत: हर साल अप्रेल ६ से १३ तारीख तक उसीकी स्मारिका के रूप में हड़ताल के लिए जातीय कांग्रेस ने निर्णय लिया था।सम्बलपुर में हड़ताल को नाकामयाब करने की कोशिश में सरकार ने अनेक नेताओं को बंदी बनाये और **नृसिंह गुरुजी ने भी सत्याग्रही के रूप में** कारावरण किया था । उन्हें थोड़े ही दिनों के बाद मुक्त कर दियागया था । वानप्रस्थ धरणीधर मिश्रजी ने अपने प्रेस में नीलकण्ठ दास के द्वारा रचित एक जातीय संगीत **स्वराज भैया अलबत होगा** छापने के जुर्म में २५ रूपये जुमानि की अदायगी की थी। कंग्रेस कायक्रमों में कोई भाग लेने न पाए उसीके लिऐ जनता को डराए धमकाए रख कर लोगों में भय दहशत फैलाए रखने के लिए सभी कार्यकर्त्ताओं को डेपुटी कमिशनर ने आदेश दिया था ।

सम्बलपुर जिले के अनेक जमींदार और गौन्तिया कांग्रेस के कार्यक्रमों को असफल कराने की खातिर सरकार की सहायता करते थे । उनमें से एक थे राजपुर के **चौहान जमींदार मधुकर साए** । १ ३ अप्रेल १ ९ २ १ को नीलकण्ठ दास , चन्द्रशेखर मिश्र, नृसिंह गुरु , महावीर सिंह, और त्रिलोचन साए देव ने राजपुर में कांग्रेस सभा का आयोजन किया था उस स्थल से हट जाने के लिए जमींदार ने आदेश दिया पर, उसे न स्वीकारने के कारण जमींदार ने गुण्डे लगाकर हमला करवाया था और उसी से सभा हो नहीं पायी थी । परन्तु, कांग्रेसी नेतागण उससे निराश हुए नहीं। उन्होंने गांव की सरहद के बाहार सभा करके ग्रामवासियों को कांग्रेस में शामिल होने को आमंत्रित किया था। ग्रामवासियों ने भी जमींदार के द्वारा प्रायोजित हिंसक आक्रमण की निन्दा करके नाराजगी जतायी थी । जमींदार के विरोध में अनेक ग्रामीणों ने आकर कांग्रेस में शामिल हुए । इसी तरह की अनेक प्रतिकूलता और बाधा-विघ्नों का सामना करते हुए कर्मियों को कांग्रेस के लिए प्रचार करना पड़ता था ।

सन. १ ९ २ १ जून १ ८ तारीख को **सदाकत आश्रम** के प्रतिष्ठाता **मज़रूल हक साहब** गोपबन्धु दास के साथ सम्बलपुर आए थे । लगभग चार हज़ार लोगों की एक सभा को संबोधित किया था । उस परिदर्शन के फलस्वरूप सम्बलपुर में हिन्दू-मुसलमानों में आत्मीय एकात्मता दृढ़ व निविड़ हुई ।

कांग्रेस की और से **तिलक स्वराज कोष** के लिए एक करोड़ रूपये कांग्रेस

की सदस्यता शुल्क के रूपमें संग्रहीत होगा, उस के लिए देशभर में एक करोड़ सदस्यों का पंजीकरण भी हुआ । २० लाख चरखों का वितरण होगा ; यह गांधीजी ने विजयवाड़ा कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर गांधीजी ने घोषणा की थी । गोपबन्धु दासजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि भारत के दूसरे प्रान्तों में निर्द्धारित लक्ष्य समय रहते पूरा होगया जब कि ओड़िशा काफी पीछे रह गया है। जून १ ९ २ १, ३० तारीख तक सम्बलपुर में ५४३४ सदस्य बने और स्वराज कोष के लिए २८७८ रूपये संग्रहीत हुए थे। सातहजार चरखे भी वितरित हुए थे ।

१ ९ २ १ दिसंबर अंतिम सप्ताह में उत्कल कांग्रेस कमेटी का पुर्नगठन हुआ था। नीलकण्ठ दासजी चुनाव में प्रतियोगी होने के लिए सम्बलपुर से विदा होगये । नयी कमेटी गोपबन्धु दास की अध्यक्षता में गठित होकर बाद में नीलकण्ठ दास उसमें निर्वाचित सदस्य हुए । तत्पश्चात काफी दिनों के लिए उत्कल कांग्रेस कमेटी में उनका वर्चस्व प्रतिष्ठित रहा था ।

१ ९ २ १ नवंवर १ ७ तारीख को इंलण्ड के युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स भारत परिदर्शन के लिए आकर मुम्बई में अवतरण किया था । उसी दिन कांग्रेस की ओर से भारत भर में हड़ताल की घोषणा हुई थी । सरकार के लिए वह एक इज्जत का सवाल था। अत:, उसके दमन के लिए सुरक्षा कार्यकर्त्ता नृशंस बने हुए थे। कांग्रेस की स्वेच्छासेवी वाहिनी को व्यासिद्ध घोषित करके बहुसंख्यक स्वेच्छासेवी हिरासत में ले लिए गये । १ ९ २ २ दिसंवर २ २ को **धरणीधर मिश्र, गणेश प्रसाद पाढ़ी, भागीरथी मिश्र, लक्ष्मीनारायण** तथा **महावीर सिंह** गिरफ्तार हुए । धारा १ ४४ जारी हुई । तत्पश्चात भी महावीर सिंह जी झारसुगुड़ा से गिरफदार हुए । सरकारी अत्याचार के खिलाफ जगह जगह शोभायात्रा और सभाएँ आयोजित हुईं। उसी समय से **चिन्तामणि पूजारी** ने झारसुगुड़ा के निकटस्थ **पंचपड़ा गांव** में आन्दोलन का प्रारंभ किया था। **चिन्तामणि और नृसिंह गुरु जी** कांग्रेस के निष्ठापर कर्मी थे। उसी से दोनों में आत्मीयता प्रगाढ़ होने लगी ।

१ ९ २ १के दिसंवर अंतिम सप्ताह में **अहमदवाद** में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था । उसमे **देशबन्धु चित्तरंजन दास** सभापति निर्वाचित हुए थे । परन्तु, उससमय वे कारागार में थे । अत: उनकी जगह **हकिम अजमल खान** सभापति पदालंकृत हुए थे । उसी अधिवेशन में ओड़िशा के प्रतिनिधियों को पहली बार प्रादेशिक

परिचय और सम्मान प्राप्त हुआ था । दूसरे प्रान्तों के प्रतिनिधियों की भांति उनके लिए भी स्वतंत्र आसन की व्यवस्था हुई । उस वर्ष ओड़िशा से १ २७ प्रतिनिधि अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे । उनमें से १ २ सदस्यों ने प्रदेश कांग्रेस कमेटी का प्रतिनिधित्व किया था। सम्बलपुर जिला कांग्रेस कमेटी सभापति **धरणीधर मिश्र** तथा अन्यतम सदस्य **ब्रजमोहन पण्डा जी** उन बारह सदस्यों में थे। धरणीधर मिश्रजी अस्वस्थता के कारण नहीं जा पाने के कारण उन्हीके स्थान पर कांग्रेस कमेटी के सम्पादक **अम्बिका माधव प्रसाद पट्टनायक** जी मनोनीत हुए थे। उसी वर्ष ब्रजमोहन पण्डाजी के नेतृत्व में सम्बलपुर से १६ सदस्यों ने अहमदाबाद की यात्रा की थी । उन सदस्यों में ब्रजमोहन पण्डा, अम्बिका माधव प्रसाद पट्टनायक , **नृसिंह गुरु**, लक्ष्मीनारायण मिश्र , राम प्रताप अग्रवाला, गणेश प्रसाद पाढ़ी , शंकर प्रसाद पाढ़ी , महावीर सिंह आदि सदस्य थे । अधिवेशन के अवसरपर सम्बलपुर के कुछेक सदस्य महात्मा गांधीजी से भेंट करके उन्हें सम्बलपुर पधारने को आमंत्रित किया था । आलोचना के समय गांधीजी ने खेद प्रकट करते हुए कहाथा कि कुछ दिन पहले सम्बलपुर में कुछेक सदस्य ग्रेफ्तार हुए तो थे , पर,बाद में माफी मांग कर मुक्त भी हुए थे । उससमय गांधीजी ने वह मन्तव्य महावीर सिंह के उद्देश्य से दियाथा और सिंहजी ने महसूसा भी जिससे उनके मन में ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वे सम्बलपुर लौटते ही कमिशनर को पत्र लिख कर उनकी रिहाई की वजह क्या थी जानना चाहा । उन्होंने वह भी कहाथा कि उन्होंने कतई क्षमा मांगी नहीं थी या जेल से रिहाई भी चाहते नहीं थे । उस क्षमा प्रार्थना से वे फांसी को श्रेयस्कर मानते हैं । पत्र पाकर कमिशनर ने उन्हे फिर से कैद किया था ।

जनता में आन्दोलन की उन्मादना को उज्जीवित रखने के लिए सम्बलपुर जिला कांग्रेस कमेटी की ओर से १९९२ जनवरी २१,२२ और २३ को त्रिदिवसीय साधारण अधिवेशन का आयोजन हुआ था । उस अधिवेशन का पहला सत्र झारसुगुड़ा , दूसरा सम्बलपुर तथा तीसरा सत्र बरगड़ में अनुष्ठित हुआ था। गोपबन्धु दास तीनों अधिवेशनों में सम्मिलित होने तथा उद्बोधित करने की स्वीकृति दी थी। पर , उसके लिए सरकारी अनुज्ञा मिली नहीं। ऊपर से उन तीन दिनों के लिए झारसुगुड़ा , सम्बलपुर और बरगड़ की पांच मिलों की परिसीमा में किसी भी सभा अनुष्ठान के लिए निषेधाज्ञा जारी होगयी। गोपबन्धु दासजी के २० तारीख को झारसुगुड़ा पहुंचने पर उन पर भी धारा १४४ जारी हो गयी । वे झारसुगुड़ा से पंचपड़ा परिदर्शन के लिए गये थे । वहां उन्होंने

चिन्तामणि पूजारी तथा नृसिंह गुरु की सांगठनिक दक्षता की ऊँची सराहना की थी ।

जनवरी २१ को झारसुगुड़ा से पांच मिलों की परिधि के बाहर **मोहन बिर्त्तिआ** के सभापतित्व में एक साधारण सभा हुई थी । गोपबन्धु दास के उद्बोधिनी भाषण-पाठ के उपरान्त सभाकार्य का प्रारंभ हुआ । उसके पश्चात सभी गोपबन्धु के दर्शन के लिए उनसे मिले थे । जनवरी २२ के सम्बलपुर अधिवेशन में **वासुदेव पण्डा** और २३ तारीख को बरगड़ अधिवेशन में **गजराज दाश** ने अध्यक्षता की थी । इन्हीं जगहों को भी गोपबन्धु जा नही पाने के कारण बाहर रहे थे । हर जगह उनके लिखित भाषण का पाठ ही होता रहा । सरकारी कठोर कार्यवायी के बावजूद ये अधिवेशन आशानुरूप सफल हुए थे ।

इसके कुछ ही दिनों के पश्चात ५ फरवरी के दिन उत्तरप्रदेश में **गोरखपुर** जिला के **चौरीचौरा** में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित होने के कारण गांधीजी के आन्दोलन को शक्त धक्का लगा था । वहां पुलिस ने अकारण कुछेक स्वेच्छासेवकों पर आक्रमक प्रहार पर अनुसंधान की मांग करके लगभग पांच सौ स्वयं सेवक शान्तिपूर्वक धारणा देकर बैठे हुए थे । पुलिस ने उन्हें भगाने के लिए उन पर गोली चलायी थी । फलस्वरूप अनेक हताहत हुए । पुलिस की गोली खतम होजाने पर उत्यक्त जनता ने थाने में आग लगा दी, जिससे २१ पुलिस कार्यकर्त्ता जीवन्त दग्धीभूत होगये । यह खबर पाकर गांधीजी काफी विचलित हुए । उनके अहिंसात्मक आन्दोलन के लिए देश में समीचीन वातावरण तैयार हो नहीं पायी है , उन्होंने अनुभव किया और उसका प्रमुख लक्ष्य साधन हो नही पाया है , व्यर्थ प्रमाणित हुआ है, स्वीकारा। अत: उन्होंने असहयोग आन्दोलन का प्रत्याहार किया था । उसके बदले में संगठनात्मक कार्यक्रमों में आत्मनियोग करने के परामर्श देकर कांग्रेस के नेतावर्ग और कार्यकर्त्ताओं को सुझाव दिये थे । उस घोषणा से गांधीजी के सहयोगी नेतृवृन्द क्षुब्ध मर्माहत हुए । तब युवावर्ग में क्रोध भी जागरित हुआ था। परन्तु, गांधीजी को किसीने कुछ भी कहा नहीं । उसके बाद सभी संगठनात्मक कार्यों में लगे रहे । अंग्रेज सरकार भी यही चाहती थी। उसी अवसर से फायदा उठाकर पुलिस ने गांधीजी को कैद करलिया । तब सरकार विरोधी आन्दोलन के जुर्म में उन्हें छ साल की सजा भी हुई ।

सम्बलपुर में असहयोग आन्दोलन के परिणाम तथा प्रभाव अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ था । इसी आन्दोलन के सुपरिणामस्वरूप सम्बलपुर में जातीय कांग्रेस की

प्रसार-प्रतिष्ठा हो पायी। कुछेक ग्राम जनपदों में तो घरघर में कांग्रेस के दीप जलाए गये। तत्पश्चात वह अनबूझनेवाले दीये सदा के लिए प्रज्वलित रहे । असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप युवावर्ग विशेष कर विद्यार्थी समूह ज्यादा से ज्यादा प्रभावित हुए । मानों उनके जीवन की गतिधारा ही बदल गयी। आन्दोलन हुआ नहीं होता तो शायद अनेक उच्चशिक्षित होकर पद पदवी प्राप्त हुए होते। शिक्षक, दफ्तरों में क्लर्की करते या किसी और कामों में नियुक्त हो कर गतानुगतिक जीवन व्यतीत करते । किन्तु , आन्दोलन ने उन में देशप्राणता भर दी थी । उसी से उद्बुद्ध हो कर वे देशसेवाव्रती हुए। उनकी लक्ष्यभूमि बदली नहीं किन्तु, उस गन्तव्य स्थल तक पहुंचने की प्रक्रिया ने उनमें जिस परिवर्त्तन का सूत्रपात किया उससे वे मानव शरीर में देवत्व के अधिकारी बने । उनमें **नृसिंह गुरु , लक्ष्मीनारायण मिश्र, चिन्तामणि पुजारी , भागीरथी पट्टनायक , दयानन्द शतपथी , घनश्याम पाणिग्राही** आदि अगणित जन नायक सत्कर्मी आज इतिहास के पन्नों में वन्दनीय हैं । यह उस असहयोग आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण देन है ।

०००

।। देव-व्यक्तित्व सम्पन्न ओड़िशा के महात्मा गांधी ।।

सभी जन्म लेकर मरते भी हैं । इस में न कोई वैचित्र्य है न उस काल से जुड़ी हुई कोई आदर्शमय शाश्वत वार्त्ता ही होती है जो युग-युग के लिए सही दिशा दर्शानेवाली आलोक-वर्त्तिका होती है । उसी से नीतिवान, चरित्रवान, समर्थ, पारस्परिक परिपूरकता में वहयोगी, अनीति, अन्याय, अनाचार के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति, अकुण्ठ तत्पर-उद्यम आदि अमृतमयी प्रेरणा से अनुप्रेरित हो मानव व्यक्ति नहीं व्यष्टि से परिवर्त्तित होजाता है । हम सुनते हैं , लोगों को कहते कि, वे महापुरुष तो व्यक्ति नहीं थे, व्यक्ति के रूप में एक अनुष्ठान थे, मानवता के प्रति सहानुभूतिशील, समाज, राष्ट्र के सर्वविध विकास के प्रति एकान्त समर्पित। एक विचार से वे तो उदासीन तपस्वी होते हैं , स्वयं के लिए अनासक्त पर समूह के लिए सजग, सचेतन। *उसी अभिनन्दनीय, पूज्य-पुरुष, शाश्वत देदीप्यमान योगी थे* **नृसिंह गुरु** ।

१९४७ अगस्त १५ को देश को मिली स्वाधीनता के कारण गुरुजी प्रमुदित उल्लसित तो अवश्य हुए थे, परन्तु सन्तुष्ट - परितुष्ट हुए नहीं । मुझे वही अनुभव हुआ था उस दिन १९८२ अक्तूबर २ के गांधी जयन्ती समावेश के अवसर पर, उनके सम्भाषण में समन्वित उद्गार के लिए । वह अभिव्यक्ति शतप्रतिशत सही थी। स्थिति आज भी वही है , वरन उससे भी विकट, भयानक। १९४७ से १९८२ तक की अवधि में भारतीय पूर्णाङ्ग विकास की आस लिए स्वप्न देखा करनेवाले अनन्य साधारण स्वतंत्रता संग्राम के निष्टापर योद्धागण मानसिक स्तर पर आहत ही हुए थे । क्यों कि नेता, सेवक कहलानेवाले सिंहभाग स्वार्थ कैन्द्रिक, भ्रष्ट असदाचारी नीतिहीन अविवेकियों के हाथों में शासन अनुशासन का वागडोर रहा और उन्हें परितृप्त करने वाले चापलूस प्रशासनिक सामान्य तथा असामान्य, गौण - प्रमुख सभी कार्यकर्त्ता ऐसे जुटे कि अस्सी

प्रतिशत आम भारतीय अलग-थलग होगये। उन्हें यह भी अनुभव हो नहीं पाया कि वे एक स्वाधीन देश के नागरिक हैं , वह भूमि एक गणतांत्रिक राष्ट्र है, जहां सभी हर विचार से समान रूप में न्याय के अधिकारी है ।

इस प्रसंग में गुरुजी की भूमिका की चर्च्चा उनकी पत्रकारिता के जीवन के अर्न्तगत करेंगे ।

संगठनिक तथा संस्कार को लेकर एक के नहीं सम्पूर्ण समाज के मन में यथार्थ सचेतनता का जागरण न हो तो , सफलता के रूप में जो भी परिणाम सामने आए उसे उसे खण्डित या आंशिक ही कहना होगा । और उसका कोई स्थायी महत्व या प्रभाव का एहसास भी वृहत्तम समाज के लिए स्वप्न के समान होगा ।

गांधीजी के वैचारिक सिद्धान्त के द्वारा अनुप्रेरित असहयोग आन्दोलन की योजना के अन्तर्गत प्रमुख कार्यक्रम को हम दो धाराओं में विभाजित कर सकते हैं । एक संगठनात्मक(Constructive) और द्वितीयत: निरोधात्मक (Non-cooperative) गठनात्मक कार्यक्रम के लिये बिना किसी दबाव के लोगों से मिल कर, सभाओं में उद्बोधन के माध्यम से ''स्वराज्य कोष '' के लिए स्वेच्छिक अनुदान , स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार , सूत काटना , चरखा चलाना , स्वचालित करघों से बूनना , महामारी , सूखा, बाढ़ , गृहदाह आदि दैवी दुर्विपाक के समय आवश्यक द्रव्य तथा सेवा, शिक्षा, वैषयिक प्रशिक्षण , कुटीर शिल्प के लिये घरेलू उद्योग, छूआ-छूत भेद विलोपन, नशाखोरी पर नियंत्रण आदि आदि के जो कार्यक्रम, उसके लिए पूर्ण रूप से समर्पित थे उत्कलमणि गोपबन्धु दास और उनके सहभागी, सहयोगी अनुप्रेरित हजारों स्वयंसेवक। इन कार्यक्रमों को क्रियाशील तथा गतिशील बनाए रखने के लिए अर्थ की सर्वनिम्न भूमिका या द्रव्य के रूप में स्वीकारना उस समय अनिवार्य था। केवल गोपबन्धु दास जी के क्षेत्रों में ही नहीं देश भर के आम आदमी में मनोवृत्ति वही थी। यह अब भी एक ग्रामीण संस्कार है । शहर, नगर महानगरों में नहीं, उसी विचार से दूर जनपदों में मूल भारत विद्यमान है । यह गठनात्मक कार्यक्रम ''संस्कार आन्दोलन'' के नाम से विदित है । इस नवीन आन्दोलन के प्रारूप बनने के पूर्व ही गांधीजी गिरफदार हुए और १९२२ मार्च में जेल की सजा सुनायी गयी ।

कठोर रौलट कानून (अप्रेल ६) तथा जालियानावाला बाग में नरसंहार (अप्रेल १३) की स्मृति विद्रोही भारतीयों में बनाए रखने के लिए पिछले सालों की भांति

१९२२ में भी देश भर में अप्रेल ६ से १३ तक जातीय सप्ताह मनया गया । सम्बलपुर में भी १९२२ उस आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। उसी के अनुसार प्रारंभ प्रार्थना और उपवास से होकर १३ तारीख उद्यापन दिवस पर हड़ताल पालित होने के कारण जनता काफी प्रभावित हुई थी। हफ्ते भर रोज नेतृवर्ग जगह जगह सभा तथा शोभायात्रा के माध्यम से कांग्रेस कार्यक्रम के प्रचार करने लगे । उसी से प्रभावित हो सामान्य कांग्रेस कर्मी तक घरों में चरखा लिए सूत काटने लगे, खद्दर पहनना शुरु कर दिया और हरिजन व आदिवासियों में नशाखोरी के विरुद्ध सचेतनता जगाते हुए जिस भांति जातीय सप्ताह का पालन हुआ उसका प्रभाव कई दिनों तक अनुभूत हुआ था। उस समय संस्कार आन्दोलन में नृसिंह गुरु , लक्ष्मीनारायण मिश्र, चिन्तामणि पूजारी, महावीर सिंह, घनश्याम पाणिग्राही आदि नेताओं ने अंशग्रहण किया था । इन्ही नेताओं के उद्यम से पंचपड़ा, रेमण्डा, मानपुर, झिर्लापालि, लइकेरा, भालूपत्रा, शासन के निकट षण्डासिंह , झारसुगुड़ा, बरगां, बरगड़, बरपालि आदि जगहों में चरखों से सूत्र उत्पादन केन्दों की स्थापना हुई थी। षण्डासिंह में नृसिंह गुरु, पंचपड़ा में चिन्तामणि पूजारी, झारसुगुड़ा में महावीर सिंह तथा मानपुर में घनश्याम पाणिग्राही प्रचार भार संभाले हुए थे। वे इस कदर उद्बुद्ध थे कि उन्होंने सद्य विवाहित पत्नी की बन्दापना की साड़ी और अपने वैवाहिक बस्त्र देशी न होने के कारण गांव की बीच गली में जला डाले । उसके बदले उस दिन से खद्दर पहनने तथा विदेशी द्रव्यों की वर्जना हेतु प्रतिज्ञा की । अनेक नेता भी उन्हीके आदर्श से अनुप्राणित हुए थे। कई हरिजन , आदिवासियों ने भी कांग्रेस में शामिल होकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । उसी समय से नृसिंह गुरु भी घूटनों तक के खद्दर पहनना आरंभ किया। उन आदिवासी हरिजनों में झारसुगुड़ा के निकट तालपटिआ के कष्टराम तंती और कड़बराम तंती , पंचपड़ा के शुखाराम तंती , मूंगापड़ा के विहारी राम आदि थे। उसके बाद नृसिंह गुरु , लक्ष्मी नारायण मिश्र, चिन्तामणि पूजारी और भागीरथी पट्टनायक में सहमति तथा अन्तरंगता बढ़ने लगी। इन महानुभावों में ज्यष्ठ थे भागरीथी जी (जन्म९.११.१८८४)। वे उम्र में गुरुजी से १७/१८ साल बड़ेथे । सर्व कनिष्ठ थे लक्ष्मीनारायण मिश्र (जन्म-११.४.१९०४)। कनिष्ठ होने पर भी लक्ष्मीनारायण कुशाग्र बुद्धि के ज्ञानी तथा सुवक्ता थे। एक तरह से वे ही सम्बलपुर में स्वतंत्रता संग्राम के दिगदर्शक थे । जातीय स्तर पर आजादी के संग्राम में वे स्वीकृत थे । १९२२ मार्च ३० तारीख को उन्हें पकड़ लिया गया, पचास रूपये जुर्माना सुनाया गया, जिसे उन्होंने

अस्वीकार करने के कारण एक महीने की सजा सुनाई गयी । पर, एक महीने के पहले ही जातीय सप्ताह के बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया। अत: वे जातीय सप्ताह के कार्यक्रमों में शामिल नहीं हो पाए थे । एक नीतिवान, नीरव साधक थे नृसिंह गुरु । व्यवहार में अत्यन्त अमायिक, सरल् तथा सौहार्द्पूर्ण थे। किन्तु, भागीरथी पट्टनायक थे कठोर और स्पष्टवादी । अन्याय के विरोध करते समय वे उग्र हो जाते थे।

वयोज्येष्ठ होने के कारण सब में भागीरथी पट्टनायक जी के प्रति सम्मान था। उसी से सुअवसर पाकर १९२२ में जातीय कांग्रेस के गया अधिवेशन में जिला कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने की इच्छा की । तब नृसिंह गुरुजी और लक्ष्मीनारयण मिश्रजी ने उनका समर्थन किया था। कांग्रेस कमेटी ने बिना कोई आर्थिक सहायता के उन्हें प्रतिनिधि के रूप में भेजने की स्वीकृति दे दी और पट्टनायकजी लोगों की सहायता से गया के अधिवेशन में भाग लिया था ।

उसके पहले १९२२ अक्तूबर २४ को उत्कल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रतिनिधि के रूपमें पंडित नीलकंठ दास , राजकृष्ण बोष तथा गोपबन्धु चौधुरी परिदर्शन के लिए सम्बलपुर आएथे । उनकी अगवानी के लिए गांधी घाट पर धरणीधर मिश्र की अध्यक्षता में एक साधारण सभा अनुष्ठित हुई थी। उसी सभा में सम्बलपुर जिला कांग्रेस का पुर्नगठन हुआ और चन्द्रशेखर बेहेरा अध्यक्ष , डा.रामचन्द्र मिश्र , सचिव और अम्बिका माधव पट्टनायक ने सहायक सचिव का पदभार सँभाला था ।

बुंदबुंद से गागर भरता है , सागर भी। हर दीर्घयात्रा की शुरुआत अवश्य ही एक पहला कदम के उठाये जाने के बाद ही होती है। जन असंतोष भी तो एक से अनेक होकर समूह समुदाय में व्याप्त होकर विद्रोह का रूप लेता है। यही भारतीय आजादी की लड़ाई की पृष्ठभूमि है । किसी एक निर्दिष्ट क्षेत्र नहीं , कहीं तीव्र , कही उग्र , कहीं शान्त हो कर भी जब जन-जन में, देश के कण-कण में विद्रोह की आग की लपटें घेरने लगती है , तब अपरितोष , शोषक केन्द्र भी संभल नहीं पाता और उस समय किसी एक नहीं समूह , समग्र की चेतनता की सघनता फलदायी होती है । उसी विचार से छोटे बड़े सभी क्षेत्रों के वैचारिक सिद्धान्तों का , कार्यक्रम, योजनाएँ महत्त्वपूर्ण मानी जाती है ।

देश भर में व्याप्त समर्पित विद्रोह के सम्मिलित भावना के अन्तर्गत उसी विचार से सम्बलपुर हो या किसी उससे भी सीमित क्षेत्र क्यों न हो , वहां की स्थिति पर विचार करते समय अखण्डित विशाल क्षेत्र की सम्यक जानकारी सहायक होती है ।

अत:, जातीय परिदृश्य में डॉ.यज्ञ कुमार साहूजी ने सम्बलपुर की भूमिका के बारे में कहते हुए जातीय परिदृश्य की सूचना दी है , जिसकी आवश्यकता थी । उस जानकारी की सार्थक सहायता से हमें सम्बलपुर के बारे में तथा वहां के प्रतिबद्ध स्वतंत्रता संग्राम के निष्ठापर योद्धाओं के व्यक्तित्व व भूमिका आकलित करने की सुविधा होगी । और हम दि.**नृसिंह गुरुजी** के जीवनादर्शों का सम्मान भी समीचीन रूप में कर पाएँगे ।

१९२२ इस्वी दिसम्बर अंतिम सप्ताह गया में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अनुष्ठित हुआ था । अध्यक्ष थे चित्तरंजन दास। भागीरथी पट्टनायक जी ने सम्बलपुर के प्रतिनिधि स्वरूप उसमें पहली बार भाग लिया था। बरगड़ समीपस्थ बालिटिकरा गांव के फकीर बेहरा गया तक पदयात्रा करके उस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। व्यवस्थापक सभा में कांग्रेसी सदस्यों को भाग लेने की अनुमति मिलनी चाहिए , उस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव आया। पर, गांधीजी ने निरोधात्मक आन्दोलन का प्रत्याहार कर लिया था और उसी विचार से व्यवस्थापक सभा वर्जन की कोई तार्किक आवश्यकता है नहीं के आधार पर तर्कों की उपस्थापना हुई। चित्तरंजन दास उसका दृढ़ समर्थक थे। पर वह प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया, संख्याधिक विपक्ष वोट के कारण। उसी से नाराज हो कर चित्तरंजन दास ने सभापति पद से इस्तीफा दे दी और कांग्रेस ही में स्वराज पार्टी के नाम से एक भिन्न दल की स्थापना की । उस स्वराज पार्टी में तब मोतिलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोष , वल्लभभाई पटेल आदि तुंग नेतागण भी शामिल हुए । फलस्वरूप १९२३ सितम्बर में कांग्रेस के एक स्वतंत्र अधिवेशन में स्वराज पार्टी और गांधीजी के समर्थकों में मतभेद मिटाने की कोशिश हुई । निर्णय हुआ कि कंग्रेसी सदस्य व्यवस्थापक सभाओं में योगदान तो करेंगें , पर उत्तरदायित्व उन्हीका होगा। स्वराजिस्ट तो वही चाहते थे । क्यों कि उससे व्यवस्थापक सभाओं में सरकारी स्वार्थी नीतियों का विरोध करते हुए प्रशासनिक व्यवस्था को जनमंगल कार्यों की ओर मुखातिब करके समुचित नियोजन हो पाएगा। इस में उनका कोई नीजी स्वार्थ नहीं था। वैरिस्टर मधुसूदन दास १९२१ जनवरी में विहार ओड़िशा प्रान्त के स्वायत्त शासन विभाग के मंत्री पदासीन हुए। फलस्वरूप वे कांग्रेस के सदस्य पद से भी वहिष्कृत हुए थे । कुछेक प्रान्तीय नेताओं ने उसी की कटु आलोचना की थी। पर, मधुसूदन दास जी उससे परेशान न होकर देश के वृहत्तम स्वार्थ की नजरिये से पौर परिषद और भिन्न कुछेक कानूनों का परिमार्जन कर पाए । यदि वे मंत्री न होते तो वह काम भी सम्भव हो नहीं पाता ।

स्वायत्त शासन विभाग में मंत्री पद अवैतनिक हो । सरकार को यह सुझाव दास जी ने दिया था । उससे स्वाधीन चेतना के आधार पर मंत्री कुछेक लोक हितकर कार्य कर पाएँगे। पर, उसमें सरकार के लिए सम्मान का प्रश्न था, जिस कारण से गवर्णर ने उसे स्वीकारा नहीं। विर्त्तानी सांविधानिक इतिहास में यह एक अद्वितीय घटना मानी जाती है । उसी कारण से गांधीजी ने मधुबाबू की काफी प्रशंसा की थी। अत: सम्बलपुरवासियों के लिए वह घटना बेहद प्रेरणादायिनी बनी। वे सारे गांधी भक्त थे, फिरभी, स्वराज पार्टी के अनुरक्त भी थे। यहां तक कि **मौन साधक नृसिंह गुरुजी** व्यवस्थापक सभा के १९२३ चुनाव-प्रचार गांवगांवों मे चल कर किया था। उस चुनाव में ओड़िशा से नीलकण्ठ दास और भुवनानन्द केन्द्र आसेम्ब्ली के लिए और गोदावरीश मिश्र, जगबन्धु सिंह, राधारंजन दास और भागवत प्रसाद महापात्र विहार-ओड़िशा व्यवस्थापक सभा के लिए चुने गये थे।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में १९२३ की एक और घटना सम्बलपुर के लिए उल्लेखनीय है । उसी वर्ष लक्ष्मीनारायण मिश्रजी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल नागपुर में पताका आन्दोलन में सम्मिलित हुआ था । उसी दल में कुंजविहारी मेहेर, कष्टराम तंती, गोविन्द ब्राह्मण , रघुवीर गौड़ और शिवगोविन्द गौड़ शामिल थे । उन्होंने वहां १४४ धारा का उल्लंघन करके रेल लाइन का अवरोध किया था, फलस्वरूप लक्ष्मीनारायण मिश्र और कष्टराम गरिफ्तार हुए थे । अवश्य उन्हें बाद मे रिहा कर दिया था।

उसी १९२३ दिसम्बर अंतिम सप्ताह में कांग्रेस अधिवेशन आंध्रप्रदेश के काकिनाड़ा में अनुष्ठित हुआ था। उस में शामिल होने के लिए भागीरथी पट्टनायक बरपाली से १४ दिसम्बर को पैदल चल कर २७ दिसम्बर को पार्वतीपुरम पहुंचे थे। वहां से ट्रेन में काकिनाड़ा पहुंच कर २८ तारीख को अधिवेशन में शामिल हुए थे। मोहम्मद अली उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। अधिवेशन के पश्चात यात्रारंभ करके वे १९२४ जनवरी २८ तारीख को घर पहुंचे थे ।

भग्नस्वास्थ्य के कारण सरकार ने गांधीजी को १९२४ फरवरी ५ तारीख को रिहा कर दिया । उस समय हिन्दू मुसलमानों में संबन्ध बेहद तिक्त हो चुका था। गांधीजी उनमें सद्भावना की प्रतिष्ठा के लिए अथक प्रयास करने लगे । वे स्वराज पार्टी की प्रतिष्ठा के कारण सन्तुष्ट नहीं थे । फिरभी वास्तविकता को स्वीकारते हुए उन्होंने

दल के प्रति श्रद्धा जतायी थी । १९२५ में चित्तरंजन दास के देहावसान के बाद स्वराज दल कमजोर होने लगा और अन्ततगत्वा कांग्रेस के साथ सम्मिलित होगया। कांग्रेस ने भी स्वराज दल की नीतियों का स्वीकार कर लिया।

१९२४ में चन्द्रशेखर सम्बलपुर जिला कांग्रेस के सभापति थे । तब अच्युतानन्द पुरोहित, बोधराम दुवे और कपिलेश्वरप्रसाद नन्द सदस्य थे । ये सम्बलपुर को बाहर से पधारनेवाले प्रसिद्ध परिदर्शक अतिथियों के स्वागत सत्कार के लिए व्यस्त रहा करते थे और कांग्रेस की नीति तथा कार्यक्रमों के प्रचार प्रसार हेतु उन में कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। गोपबन्धु दास कारागार में बंदी थे जिससे प्रान्तीय केमेटी के कार्यक्रमों में भी शिथिलता परिलक्षित होने लगी थी । उसी से प्रान्तीय कमेटी के सदस्य सम्बलपुर जिल्ला कांग्रेस के बारे में जानकारी लेने की स्तिति में नहीं थे। भागीरथी पट्टनायक की डायरी के अनुसार प्रान्तीय सभापति नीलकण्ठ दास को अभियोग पत्र के जरिये सूचित कर दिया गया था । पर, दासजी ने उस पर गुरुत्वारोपित न करके कहा - जहां स्वयं लक्ष्मीनारायण, भागीरथी, नृसिंह , चिन्तामणि सरीखे लोग हैं वहां किसी और की क्या आवश्यकता है ? पर, उस बहलाने जैसी बात से भागीरथी जी सन्तुष्ट नहीं थे ।

१९२४ जून में गोपबन्धु दास कारामुक्त हुए । उसी महीने की २८-२९ तारीख को उत्कल प्रादेशिक कांग्रेस का पहला अधिवेशन कटक में अनुष्ठित हुआ। उसमें भारत के प्रख्यात वैज्ञानिक प्रफुल्ल चन्द्र राय ने अध्यक्षता की थी। गोपबन्धु दास के त्याग तथा देशप्रेम की भूयसी प्रशंसा करते हुए संवोधन में उन्होंने दासजी को उत्कलमणि कहा। उसी दिन से गोपबन्धु दास उत्कलमणि के रूप में विदित हुए । आज भी केवल उत्कलमणि कहे जाने पर प्रत्येक उत्कलीय स्वाभाविकता में जान जाते हैं। उत्कलमणि नाम ही मानों गोपबन्धु दास की असली पहचान है । उसी अधिवेशन में मधुसूदन दास भी उपस्थित थे और वे फिर से कांग्रेस में शामिल करलिए गये । भागीरथी पट्टनायक तथा नृसिंह गुरु के अलावा अन्य सम्बलपुर जिला कांग्रेस के कार्यकर्त्ता प्रादेशिक कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। नृसिंह गुरु और भागीरथी पट्टनायक सरीखे निष्ठापर कार्यकर्त्ता अधिवेशन के लिए आमंत्रित हुए नहीं थे। वही बजह थी कि उन्होंने भाग लेने पहुंचे नहीं। पर, उनमें असंतोष गहराने लगा। १९२४ अगस्त ६ तारीख को जिला कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में विहार ओड़िशा प्रदेश के छोटेलाट को संबर्द्धित किया जाने के कारण उन असन्तुष्टों को भड़कने का अवसर मिला

और उन्होंने उसका विरोध किया। उन्होंने चन्द्रशेखर को सभापति के रूप में स्वीकारा नहीं और सम्बलपुर में एक समान्तराल जिला कांग्रेस कमेटी की प्रतिष्ठा भी होगयी । चिन्तामणि पूजारी सभापति तथा भागीरथी पट्टनायक सम्पादक बनाए गये। सक्रीय सदस्य के रूपमें **नृसिंह गुरु** और **लक्ष्मीनारयण मिश्र** चुने गये थे। १९२४ दिसम्बर में जातीय कांग्रेस के सालाना अधिवेशन बेलगांव में आयोजित हुआ था। चिन्तामणि पूजारी के समर्थक सम्बलपुर कांग्रेस की अनियमितता और उत्कल प्रदेश कमेटी की उदासीनता से क्षुब्ध होकर भारतीय नेताओं के ध्यानाकर्षण के लिए एक को प्रतिनिधि के रूप में भेजना निश्चित हुआ तो उसके लिए भागीरथी पट्टनायक जी चुनेगये। चिन्तामणि पूजारी के स्वहस्तलिखित अभियोग पत्र हस्ताक्षरित होकर साइक्लोष्टाइल प्रतिलिपियाँ निकाली गयी थी। लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने जवाहरलाल नेहरू जी को भी एक व्यक्तिगत पत्र लिखाथा । सब लेकर भागीरथी पट्टनायक बेलगांव आए। कांग्रेस-अधिवेशन के शुरु होते ही उन्हों ने मिश्रजी के पत्र को नेहरू जी को सौंपने के बाद अभियोग पत्र की प्रतिलिपियाँ सभा स्थल पर वितरित करने लगे। जातीय कांग्रेस की ओर से उन अभियोगों की जांच के लिए डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, राघवेन्द्र राव और रविशंकर शुक्ला चुने गये। सही उस समय गोपबन्धु गांधीजी के साथ सभा स्थल को आकर उस पत्र को पढ़कर दौड़ कर आते से पट्टनायकजी के पास पहुंचे और उन्हें बाहों मे भर कर कहा - भाई, मुझे इन सब बातों का पता नहीं था। मैं लौटते ही सभी समस्याओं का समाधान कर दूंगा। घर के झमेलों को बाहर बीच सड़क पर नंगा करना तो ठीक नहीं होगा ? गोपबन्धु की शान्त सौम्य मूर्त्ति और उनकी मीठी बातों से अभिभूत होगये भागीरथी और तत्काल उन्होंने उस अभियोग पत्र का प्रत्याहार कर लिया।

बेलगांव से लौटते समय नागपुर में भागीरथी की भगवान दीन नाम से एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता से भेंट हुई। दीनजी ने कहा- भाई, चन्दा सहायता लेकर भीखमंगे सन्यासियों की भाँति कांग्रेसी सभा हो या कुछ और समारोह हों , उसमें शामिल होना अच्छा नहीं लगता । उससे कांग्रेस को अपयश ही मिलेगा। लोग सोचने लगेंगे कि कांग्रेसी दीन भीखारी हैं। परिवारवालों को सूत काटना सीखाओ , कमाना सीखो , मांगो नहीं। उसी दिन से भागीरथी ने किसी से भी सहायता के लिए अनुरोध किया नहीं। जातीय कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने गये नहीं और सूत काटना उनके लिए अभ्यास-सा बन गया।

गांधीजी के संस्कार आन्दोलन के अंग के रूप में, खास कर १९२५ से चरखे से सूत काटना , खद्दर कपड़ों की बूनाई पर आधारित हो खद्दर को एक तरह से भारतीय जातीय पोषाक की मान्यता मिली और वह तो कांग्रेसियों का एकमात्र परिधान माना जाने लगा। सूत काटना सभी कांग्रेसियों के लिऐ एक दैनन्दिन अपरिहार्य काम जैसा हो गया। गांधीजी ने १९२५ में अखिल भारतीय बूनकर संघ की स्थापना की । इस संघ के द्वारा भारत भर में कपास की खेती,चरखों से सूत काटना, बूनना तथा उत्पादित वस्त्रों को बेचने की व्यवस्था करना आदि कार्य योजनाबद्ध रूप से होने लगे। गांधीजी इस संघ को राजनीति से अलग रखना चाहते थे। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि उसमें संश्लिष्ट कार्यकर्त्ता असहयोग आदि आन्दोलनों में भाग न लें। ओड़िशा में अखिल भारतीय बूनकर संघ के परिचालक थे गोपबन्धु चौधुरी और रमा देवी। सम्बलपुर में इस संघ की शाखा १९२५ में स्थापित हुई। **नृसिंह गुरु, महावीर सिंह, दुर्गा गुरु और कृतार्थ आचार्य** उस संघ के परिचालक थे। इनके साथ सहायता देने के लिए थे लक्ष्मीनारयण मिश्र, चिन्तामणि पूजारी और भागीरथी पट्टनायक ।

सम्बलपुर में इसके पूर्व ही १९२२ से खादी आन्दोलन की शुरुआत हो चुकी थी। उसके लिए कई जगहों पर सूत काटने तथा बूनने के केन्द्रों की भी प्रतिष्ठा हो चुकी थी । परन्तु, १९२५ में उन केन्द्रों की अभिबृद्धि हुई । उससे पंचपड़ा, तालपटिआ, रेमण्डा, मानपुर, बरगड़ आदि केन्द्रों में बूनाई का काम तेजी से बढ़ने लगा। जिला भर के सभी कार्यकर्त्ता पंचपड़ा का मोटा खद्दर पहना करते थे । धीरेधीरे बरगढ़ में खादी केन्द्र भी लोकप्रिय होने लगा। कृतार्थ आचार्य कटक ब्रह्मपुर से खादी वस्त्र लाकर बरगढ़ दूकान में बेचने लगे, वह कपड़ा सम्बलपुरी खादी से उन्नत किस्म का था । डेलांग आश्रम के खादी वस्त्रों की तब ख्याति थी । आश्रम में अन्तेवासियों के रूप में जुलाहे रहते थे । कपास की खेती थी जिससे स्थानीय खेतिहर भी लाभान्वित होते थे। गांवगांव में कर्मीगण कपास पहुंचाते और प्रस्तुत सूत ले आते थे । जिससे विधवा महिलाओं को भी अन्तत: कुछ मिलजाया करता था । कुछ दिनों के लिए मेरे दिवंगत पिता श्रीधर उद्गाता उस आश्रम की निगरानी करते थे । नेताजी के पिताश्री जानकी बल्लभ बोष के सुझाव हेतु वे शान्तिनिकेतन में कला प्रशिक्षण सहित विशेष पत्र के रूपमें सूत रंगने, बातिक तथा स्टाम्पिंग की शिक्षा पायी। उत्कल प्रान्त में गोपबन्धु दास के द्वार प्रवर्त्तित खादी आन्दोलन १९२५ के पूर्व की बात है । कपड़ों को रंगाने का विचार था स्व.जानकी बल्लभ बोष

का , क्यों कि सधवाएँ बिलकुल सफेद पहनती नहीं है । अत: अन्तत: धारियों के लिए और स्टाम्पिंग के माध्यम से डेलांग आश्रम में वे कपड़े बन कर कटक विक्रय केन्द्र को लाये जाते थे। ·

खादी आन्दोलन को जनप्रिय् करने के लिए गांधीजी ने १९२५ से भारत भर की यात्रा की थी । १९२७ में वे ओड़िशा आए तो थे पर आकस्मिक अस्वस्थता के कारण सम्बलपुर आ नहीं पाए । १९२८ में लाला लजपत राय के देहावसान के कारण उनका सम्बलपुर कार्यक्रम रद् कर दिया गया था । परन्तु , उसी वर्ष दिसम्बर २८ को वे कोलकाता अधिवेशन के लिए चलते समय सम्बलपुर में एक दिन के लिए रुके थे । इसे खादी यात्रा के एक अंश माना जाताहै । उसी १९२८ में गांधीजी की धर्मपत्नी कस्तूरवा और पुत्र देवदास के साथ झारसुगुड़ा होते हुए सम्बलपुर पहुंचे थे। सुबह ब्रह्मपुरा मंदिर के समीप महानदी बालुका तट पर आयोजित एक आम सभा को संवोधित किया था। अपराह्न के समय सम्बलपुर की महिलाओं की ओर से गांधीजी तथा कस्तूरवा संवर्द्धित हुए । गांधीजी महन्ति पड़ा में दयासागर बहिदार के द्वारा स्थापित स्वदेशी वस्त्रालय देख कर काफी प्रसन्न हुए । उन्हीं के सम्मान में रेमण्डा और पंचपड़ा के खादी वस्त्रों की एक प्रदर्शनी भी हुई थी। किन्तु , समयाभाव के कारण उन्हें वहां तक पहुंचाना सम्भव हुआ नहीं। चिन्तामणि पूजारी, भागीरथी पट्टनायक प्रमुख नेतागण उसीसे निराश हुए । कोलकाता अधिवेशन से लक्ष्मीनारयण मित्र तथा पट्टनायक जी के वापस आने के पश्चात प्रादेशिक कमेटी के सुझाव के अनुसार सम्बलपुर जिला कमेटी का पुर्नगठन हुआ था। उस नवगठित कमेटी में चिन्तामणि पूजारी, सभापति, भागीरथी पट्टनायक, सम्पादक तथा लक्ष्मीनारायण मित्र के साथ नृसिंह गुरुजी संगठन सम्पादक रहे । भागीरथी पट्टनायक ने अपनी डायरी में जो लिखा है , वह इस प्रकार है - '' बड़ेबड़े तथा उच्चशिक्षितों के अख्तियार से रिहा होकर कांग्रेस कमेटी आम गांववालों के पास पहुंची तो लगा मानों महल से उतर कर ग्रामीण कच्ची मिट्टी के मकानों में कांग्रेस कमेटी पहुंची । इस उल्लेख का आशय यह है कि सही काम तो जनपदों में आवश्यक है, शहरों में नहीं। यह आवश्यकता आज भी हैं । समकालीन आत्मकेंन्द्री राजनीति में चुनाव के समय ही आम जनता खास बन जाती है , फिर उन्हें पहचाननेवाला नेता , लोप प्रतिनिधि, मंत्री एक भी नहीं होता ।

गांधीजी के अथक प्रयास और यात्राओं के बावजूद खादी शिल्प की कोई

आशानुरूप उन्नति हुई नहीं। १९३० के पश्चात कई क्षेत्रो में शिथिलता भी आयी । तब तो कृतार्थ आचार्य जी खादी आन्दोलन में एक प्रमुख पुरोधा थे। उनका विचार तार्किक और यथार्थ था। उन्होंने निर्णय लिया कि चरखे से प्रस्तुत धागों से बूनाई कष्टसाध्य और समयसापेक्ष भी है । उसी के भरोसे रहें तो बूनकर मजदुरों के लिए पेट पालना भी दुभर होगा। सम्बलपुर के खादी वस्त्रों से उन्नत थे कटक तथा ब्रह्मपुर के खादी वस्त्र । उसीके कारण भी सम्बलपुर की खादी की लोकप्रियता घटने लगी। कृतार्थ आचार्य ने सोचा पश्चिम ओड़िशा में कुछेक अनुन्नत सम्प्रदाय युगों से बूनाई करते आरहे हैं। वे अभ्यस्त हैं , साथ ही उनमें मौलिक शिल्प चातुरी और कला प्रतिभा है , जिसे विकशित करना चरखे के धागों के इस्तेमाल से सम्भव नहीं है । क्यों कि वह निखार ही आएगा नहीं। उन्होंने मिल के धागों को रंग कर उन्हें सही तालीम देने की व्यवस्था की । थोड़े ही समय में बूनकारों के काम की प्रगति हुई और बांध शिल्प (सम्बलपुरी बयन कला की एक खास और मौलिक कारीगरी , जो आज भी भारत भर में बेजोड़ है) की ख्याति बढ़ने लगी। कटक की चाँदी में तारकसी कामों की कलात्मक बरीकियों की भाँति सम्बलपुरी वस्त्र की बूनाई में भी सूक्ष्म कलात्मकता निखरने लगी। यह वयन कला समग्र पश्चिम ओड़िशा की कला है। जितने बूनकर सोनपुर इलाके में अब भी कार्यरत है , उतने बरपाली बरगड़ आदि में नहीं हैं। सुवर्णपुर के मेण्डा सरीखे अनेक गांवों के जुलाहे आज भी कार्यरत हैं । कृतार्थ आचार्य महोदय की पृष्ठपोषकता तथा कार्यकुशलता के कारण इस क्षेत्रीय और भारत भर में प्रसिद्ध इस वस्त्र की पहचान सम्बलपुरी हो गयी है ।

इस प्रकार वयन कला में निखार आने लगा, प्रसिद्धि बढ़ने लगी । सम्बलपुरी वस्त्रालय की प्रतिष्ठा हुई । सम्बलबुर ,कटक , ब्रह्मपुर आदि में प्रस्तुत खादी वस्त्रों की मांग घटने लगी । अत: धीरे धीरे केवल ओड़िशा ही में नहीं, भारत भर में, यहां तक कि विदेशों में भी समादृत होने लगी । इस के लिए स्व.देवाधि मेहेर , पद्मश्री कुंजविहारी मेहेर , पद्मश्री चतुर्भुज मेहेर आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण है ।

कईयों ने तब कृतार्थ आचार्य जी की कटु आलोचना भी की कि इस बजह से जो राष्ट्रीय चेतना, देशप्रेम की भावना, आजादी की लड़ाई के अन्तर्गत खादी आन्दोलन के पीछे जो सैद्धान्तिक विचार निहित होकर है वह मिल के धागों के इस्तेमाल से विलुप्त हो कर निरर्थक होगया । और खेद की बात तो यह है कि जो खादी शिल्प के एक प्रमुख पूजारी थ ; कृतार्थ आचार्य , वे ही उस विलोपन के कारण बने । पर , पश्चिम ओड़िशा की

वयन कला कौशल को जीवित रखने के लिए इसके अलावा और कोई पंथा ही नहीं थी। पश्चिम ओड़िशा की इस मौलिक कला के अर्न्तगत राष्ट्रीय चेतना नहीं है कहें तो भी सच को जूठलाने जैसा ही होगा ।

उस समय एक और कठिन समस्या थी समाज में अस्पृश्यता और नशाखोरी। आजादी की लड़ाई एकात्म अभिन्नतां से जीती जा सकती है और उसके लिए वाधक था समाज में छूआ छूत के विचार जिससे हिन्दू होते हुए भी दलित अनुन्नत वर्गके लोगों को अछूत मानते हुए उन्हें छूएँ भी तो उच्चवर्ग के लोग अपवित्र हो जाते। इस तरह की एक कलंकित अंधविश्वासी धारणा थी समाज में। जब कि गांधीजी चाहते थे, हिन्दू - मुसलमानों में भी भेदाभेद न हो, सभी भारतीय हैं और भारत की आजादी की लड़ायी मजहबी दूरियां मिटा कर ही लड़ी जाय; तब हिन्दू-हिन्दू में यह छूआ छूत का भेद एकत्व विरोधी होगा ही। अस्पृश्यता हिन्दू समाज में एक कुत्सित कलंक के समान था । उसी कुसंस्कार के निराकरण के लिए गांधीजी निरंतर यत्नशील थे। जब तक समाज इस व्याधि-पीड़ित होगा तब तक यथार्थ स्वराज की प्रप्ति हो नहीं पाएगी । अस्पृश्यता की घृणित धारणा के कारण वे अनुन्नत वर्ग के लोग हिन्दू मंदिरों में देवदर्शन के लिए भी प्रवेश कर नहीं पाते थे, उच्चवर्गीय लोगों से दूरी बरतते हुए मेल मिलाप नहीं थे। उस वर्ग के लिए कूआं अलग, तालाव घाट अलग। दलित वर्ग के बच्चे उच्चवर्गीय छात्रों के साथ मिलकर विद्यालयों में पढ़ नहीं पाते आदि कुसंस्कारों के कारण एक ही समाज दो भागों मे बँट कर था।

सन् १९३० में नीलमणि सेनापति सम्बलपुर के डेपुटी कमिशनर थे। उनकी अभिज्ञता के विवरण सम्बलपुर जिला गजेटीयर (पृ.४५६) पर लिपिबद्ध हो कर है । वे मानेश्वर प्राथमिक विद्यालय के परिदर्शन के लिए गये हुए थे। कक्षा में पढ़ायी चल रही थी । उस समय बाहर बरामदे पर एक हरिजन बालक (तब आत के अनुसार गण्डा) अकेला बैठकर पढ़रहा था । सेनापतिजी बच्चे के हाथ पकड़ कर कक्षा कोठरी के अंदर ले गये। पूछने पर उन्हें सूचना मिली कि लड़का अछूत है और वह अगर कक्षा में उच्चवर्गीय विद्यार्थियों के साथ बैठे तो, सभी विद्यालय छोड़ कर चले जाएँगे। डिप्टी कमिशनर सेनापति साहब ने कहा कि सब कक्षा छोड़ कर चले जाते हैं तो जाने दें , विद्यालय इसी एक ''गण्डा पिला '' से चलेगा। परन्तु , एक भी छात्र कक्षा तज कर चला नहीं गया । सेनापति ने लिखा है ,उसके द्वारा अस्पृश्यता निराकृत हुई नहीं । वह

डिप्टी कमिशनर का डर था जिससे विद्यार्थी क्लास तज कर भागे नहीं।

प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में कहीं भी अस्पृश्यता का उल्लेख नहीं है । शायद इस प्रथा का समावेश ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा के सुदृढ़ीकरण के लिए वर्णाश्रम धर्म में हुआ था। धीरेधीरे वही हिन्दू संस्कृति के अंग-सा होगया । उन्नीसवीं सदी में विज्ञ चिन्तकों ने इस असंस्कार कुसंस्कार का विरोध किया था। उसी समय ओड़िशा में कबीर पंथी, सत्नामी तथा संत भीमभोई की महिमा सम्प्रदाय की और से भी जातिप्रथा और छूआछूत भेद के विरुद्ध आन्दोलन के रूप में आवाज उठायी गयी थी। गांधीजी की प्रेरणा से सत्याग्रहियों ने अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन पर भी जोर डाला ।

गांधीजी के द्वारा प्रोत्साहित अनुप्रेरित चरखा आन्दोलन , जाति और अस्पृश्यता निराकरण के लिए उद्यम से अस्पृश्य और दलित विशेष रूप से प्रभावित होकर हजारों की संख्या में कांग्रेस में शामिल होने लगे। प्रमुख व्यक्तियों में पंचपड़ा के शुखारा तंती, तालपटिआ के कष्टराम तंती और कइदराम तंती, झारसुगुड़ा के महावीर सिंह , मुंगापड़ा के विहारी राम और रामभरोसे राम, बरगड़ केगोपाल गंडा आदि के उत्साह उद्दीपना से कांग्रेसी अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन को दृढ़ तथा तेज करने में काफी सहायता मिली। अस्पृश्यता उच्छेद आन्दोलन के साथ नशामुक्ति आन्दालन भी जुड़ा हुआ था। हजारों की संख्या में आदिवासी , हरिजन हाथों में ताम्बा, तुलसी और शालग्राम लेकर प्रतिज्ञा की कि वे और मद्यपान तथा निषिद्ध पशुमांस भक्षण करेंगे नहीं। आर्यसमाजी स्वामी सच्चिदानन्द तथा पण्डित गयादीन आदि के शुद्धिकरण आन्दोलन से भी इस कार्यक्रम को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।

सम्बलपुर में चन्द्रशेखर बेहेरा, नृसिंह गुरु और लक्ष्मीनारयण के उद्यम से १९२९ में अस्पृश्यता निवारण समिति की स्थापना हुई । थोड़े ही दिनों में अनेक आदिवासी हरिजन गांवों में मद्यपान पूर्णतया बन्द होगया । उस समय जिला कांग्रेस के सभापति चिन्तामणि पूजारी ने गर्व के साथ पण्डित जवाहरलालाजी को सूचना दी थी। यह सफलता सम्बलपुरके लिए महत्त्वपूर्ण थी। नेहरू जी ने भी उत्तरस्वरूप खुशी जाहिर करते हुए बधाई दी थी। यह विवरण भागीरथी पट्टनायक जी की जीवनी में उल्लिखित है। कांग्रेस कर्मियों ने नशा निवारण के लिए शराब की दूकान और शराब भट्टी के आगे पिकेटिंग करके अवरोध करने लगे । उस समय भागीरथी पट्टनायक के बारह साल के बेटे ने जिस प्रकार उत्साह प्रदर्शन किय था उसी से प्रेरित होकर अनेक बालक वानर सेना

में सम्मिलित हुए थे। परिणाम स्वरूप अनेक भट्टी ठेकेदार लाचारी में भट्टी बंद करके शराब लायसेन्स सरकार को लौटाये थे । अनेक भट्टियों के बन्द हो जाने के कारण लगान की वसूली भी कम हुई । उसी मुद्दे को लेकर छोटेलाट ने सम्बलपुर डेपुटी कमिशनर जॉनष्टॉन से कैफीयत मांगी थी।

तब लक्ष्मीनारायण मिश्रजी जॉन ष्टॉन साहब से मिले थे । स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्हों ने समझाया था कि नशाखोरी के विरुद्ध वह कार्यवायी आवश्यक है । अत: उसके लिए बाधक न बनने को अनुरोध किया। आयरलैण्ड निवासी स्वाधीनचेता कमिशनर में उस आन्दोलन की यथार्थता की उपलब्धि थी । अत: उन्होंने जबाव में शीर्ष अधिकारियों को सूचित करते हुए अनुरोध किया कि वे एक संस्कारी आन्दोलन के लिये बाधक न बने। जहां तक राजस्व की हानि हो रही है वे और तरीके से उस क्षति की भरपायी कर देंगे । पर, उस जबाव से उच्चाधिकारी सन्तुष्ट हुए नहीं और कमिशनर जॉनष्टॉन निलंवित कर दिये गये । युवानेता हरेकृष्ण महताब ने उन्हें आमंत्रित करके ले जाकर उनके लिए सारी व्यवस्ता करदी। कुछ ही दिनों के बाद जॉनष्टॉन साहब की निर्दोषता प्रमाणित हुई। पर, उन्होंने पुनर्नियुक्ति का प्रत्याख्यान करके इस्तीफा देकर इंलैण्ड वापस चले गये ।

नैष्ठिक ब्राह्मण होते हुए भी चन्द्रशेखर बेहेरा, नृसिंह गुरु,लक्ष्मीनारयण मिश्र, कृतार्थ आचार्य , घनश्याम पाणिग्राही आदि उस समय एक अति प्रभावशाली काम करते रहते थे। वे अपने क्षेत्रों में हरिजन वस्तियों में पहुंच कर लोगों से मिलते रहे, साथ बैठ कर वार्त्तालाप की तथा उनके द्वारा अर्पित जलपान तक को नकारा नहीं । उन्हें कायिक आन्तरिक शुद्धता बरतने को प्रेरित करते रहे । उसके पहले गण्डा पड़ा (हरिजनों की वस्ती या मोहल्ला) साफ सुथरा रहता नहीं था। पर थोड़े ही दिनों में वह स्थिति सुधर गयी। सब ने शराब छोड़ दी। घरों की परिच्छन्नता के साथसाथ आंगन में तुलसी का विरवा शोभित होने लगा।

१९२९ के सितंबर महीने में बामडा से दयानन्द शतपथी सम्बलपुर आए तथा कांग्रेस की सदस्यता ली। उनके पिता विश्वनाथ शतपथी गंजाम के बेलगुण्ठा से बामड़ा आकर शिक्षकता करते थे । बामड़ा के देवगड़ में १९०८ जुलाई ७ तारीख, दयानन्द का जन्म हुआथा । आर्थिक अस्वच्छलता के कारण उनकी पढ़ाई पूरी हो नहीं पायी । वे कुचिण्डा के परुआभाड़ि उच्च प्राथमिक विद्यालय में हेड़ पण्डित के रूप में

नियुक्त हुए थे और बचपन ही से राष्ट्रीय चेतना से उद्‌बुद्ध थे । राजद्रोह के अपराध से वे निष्कासित हेकर सम्बलपुर चले आए। उसी दिन से नृसिंह गुरु, भागीरथी पट्टनायक, चिन्तामणि पूजारी और लक्ष्मीनारायण मिश्र के साथ उनकी अन्तरंग मित्रता इस भांति स्थापित हुई कि उन्हें लोग सम्बलपुर कांग्रेस में पंचसखा कहने लगे। उसी समय अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन सम्बलपुर में जोरों पर था। एक नैष्ठिक ब्राह्मण सन्तान होते हुए भी दयानन्द उस आन्दोलन में शामिल होगये और उपवीत तज कर हरिजनों के द्वारा पकाया हुआ अन्न तक को स्वीकारा।

१९३२ में अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन की गति ही बदल गयी । १९३२ अगस्त १७ को ब्रिटिश सरकार ने चुनाव कानून को संशोधित (ammend)करके सांप्रदायिक निर्णय (Communal Award) की घोषणा की । उसी के अनुसार हिन्दुओं मे दलित संप्रदाय और पिछड़े वर्ग (Backward class ,Scheduled tribe , Scheduled caste) की घोषणा करके चुनाव क्षेत्रों की घोषणा की । उससे कुलीन हिन्दुओं से उन्हें एक प्रकार विच्छिन्न करके स्वतंत्र जाति की मान्यता दे दी गयी। उस समय गांधीजी यारबाड़ा जेल में थे। वे जेल ही से उस निर्णय के विरुद्ध दृढ़ प्रतिवाद करते हुए उसे प्रत्याहार करने की मांग की। न हो तो वे आमरण भूख हड़ताल करने की घोषणा की। गांधीजी का अनशन सितंबर २०, १९३२ को आरंभ हुआ । गांधीजी की जीवन-रक्षा के लिए भारतीय नेतागण विचार आलोचना के लिए पुणे (पुना) में सम्मिलित हुए तथा स्वतंत्र चुनाव क्षेत्रों को रद्द करके दलित वर्ग के लिए ७१ चुनाव क्षेत्रों के बदले १४८ क्षेत्रों के संरक्षण हेतु सुझाव दिया। पुणे संविद् पत्र (agreement) हिन्दू महासभा के द्वारा भी अनुमोदित हुआ तो सरकार उसे स्वीकारने को बाध्य होगयी। गांधीजी ने सितंबर २६ को अनशन निवृत्त हुए थे।

उसके बाद गांधीजी के निदेशानुसार अस्पृश्यता निवारण के लिए कोशिश जोर पकड़ने लगी। १९३३ फरवरी ११ तारीख को गांधीजी के सम्पादन में हरिजन साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। तत्काल बाद **सर्वभारतीय हरिजन सेवक संघ** की स्थापना हुई। घनश्याम दासजी बिड़ला संघ के सभापति तथा अमृतलाल ठक्कर (ठक्कर बापा) सचिव रहे । कविराज बालुकेश्वर आचार्य प्रान्तीय शाखा के सभापति बने । उस समय सम्बलपुर शाखा का दायित्व **नृसिंह गुरु** ने सँभाला था। सम्बलपुर में छोटेबड़े सभी कांग्रेसी कार्यकत्ताओं की आन्तरिक सहायता-सहयोग उन्हें प्राप्त था। उसी

के लिए चन्द्रशेखर बेहेरा की अध्यक्षता और नृसिंह गुरु के सचिवत्व में एक छ सदस्यों की कार्य कारिणी समित बनायी गयी।

१९३३, अप्रेल में लोक सेवक मण्डल के सदस्य लक्ष्मीनारायण साहू हरिजन आन्दोंलन को आगे बढ़ालेने के अभिप्राय से सम्बलपुर पहुंचे थे । उन्हीं के उद्यम से आन्दोलन त्वरित होने लगी । कर्मनिष्ठ संपादक नृसिंह गुरुजी उन्हें हर प्रकार अकुण्ठ सहयोग देते रहे। बाधक बनने की सरकारी कोशिश भी होती रही । फिरभी सरकार को कामयावी मिल नहीं पायी। अप्रेल ३० को अत्युत्साह से हरिजन दिवस मनाया गया।

हरिजनों की उन्नति के लिए लोगों ने अकुंठित मन से चन्दा देकर सहायता की। हरिजन वस्तियों में सफाई और सेवा कार्य चालू होगया। उसी दिन गांव में एक कूँआ या हरिजनों के लिए खुला रखने का अनुरोध किया गया। सुबह और शाम को सवर्ण और हरिजनों ने मिलकर कीर्त्तन किये। फटापालि गांव में हरिजनों के लिए एक प्राथमिक विद्यालय की स्थापना हुई। विभिन्न जगहों मे सभा समारोह अनुष्ठित होकर हरिजनों के लिए विकासशील योजनाएँ बनायी गयी । १९३३ मई के प्रथम सप्ताह में सर्वभारतीय हरिजन सेवक संघ के संपादक ठक्कर बापा ने सम्बलपुर परिदर्शन के लिए आए और आन्दोलन की सफलता के लिए आनन्द परितोष प्रकट किया था।

हरिजन आन्दोलन को व्यापकता प्रदान करने के लिए गांधीजी ने १९३३ नवंबर से हरिजन गस्त (यात्रा) का आरंभ किया और १९३४ अगस्त तक उन्हों ने १२,५०० मीलों की यात्रा तय कर लिया। उस समय उन्होंने भारत भर में लगभग सभी प्रान्तों की यात्रा की थी।

गांधीजी ने इसी यात्रा में झारसुगुड़ा होते हुए १९३४ मई ५ तारीख को सम्बलपुर पहुंचे । झारसुगुड़ा में उनका भव्य स्वागत हुआथा । रेल स्टेशन पर विहारी राम की माँ तुलसी देवी ने जब गांधीजी को माला पहनायी तो गांधीजी ने वे हरिजन हैं जानकर अपने गले की माला उन्हें ससम्मान पहनायी थी और उनका संवोधन हरिजन माता कह कर किया था। झारसुगुड़ा और सम्बलपुर में उन्होंने विशाल जन समावेश को संवोधित करके उद्‌बोधित किया था। सम्बलपुर में गांधीजी डॉ.रामचन्द्र मिश्र जी के आवास पर टिके थे। नृसिंह गुरु और और ठक्कर बापा के साथ गांधीजी ने ठेलको पड़ा हरिजन वस्ती परिदर्शन कर के गुरुजी के कार्यें की भारी सराहना की थी । लौटते समय कोढ़ियों की वस्ती में चल कर उनके साथ कुछ समय के लिए रुके थे।

गांधीजी के परिदर्शन के अवसर पर जनार्द्दन सूपकार ने हरिजनों के लिए फाटक के समीपस्थ अपना खमार घर (गोदाम) का दान किया था। उस मकान की सामान्य मरम्मत के बाद उसे हरिजन छात्रावास बना कर गांधीजी के द्वारा लोकार्पित किया गया था। उस छात्रावास की परिचालना-दायित्व नृसिंह गुरुजी ने सँभाला था। पहले छात्रावास तीन अन्तेवासियों से शुरु हो कर १५ आये । १९४२ मे भारत छोड़ो आन्देलन में सक्रीयता के कारण गिरफ्तार होने तक गुरुजी छात्रावास के परिचालक थे। उस समय छात्रावास केन्द्रित होकर हरिजनों की सेवा में अपने को पूर्ण रूप में समर्पित कर दिया था।

हरिजन छात्रावास के अन्तवासियों में स्वतंत्रता के पश्चात अनेक ने समाज में सम्मानित प्रतिष्ठित होकर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । उनमें से मंत्री मोहन नाग, घनश्याम बेसन पदस्थ सरकारी कार्यकत्ता तथा पुरन्दर शासनी डाक विभाग में कार्यभार सँभाला था ।

गांधीजी सम्बलपुर में मात्र एक दिन के लिए रुके थे । परन्तु, उनके आदर्श और प्रेरणा से उस क्षेत्रों के कांग्रेस कर्मीगण हरिजन सेवा के लिए काफी दिनों तक अनुप्रेरित बने रहे थे। १९३४ जुलाई २९ को सर्वभारतीय हरिजन दिवस आन्तरिकता के साथ सम्बलपुर में मनाया गया था। अगस्त २३ तारीख को ओड़िशा प्रादेशिक हरिजन संघ के सम्पादक नन्द किशोर दास सम्बलपुर परिदर्शन के लिए आये थे। और उस अवसर पर जिला हरिजन कमेटी का पुर्नगठन हुआ था। पहले की भांति नृसिंह गुरुजी सम्पादक पद के लिए चुने गये थे। सम्बलपुर में हरिजनों की सेवा के लिए नन्द किशोर दास ने प्रान्तीय संघ की ओर से ७२८ रुपयों की मंजूरी दी थी।

१९३४ अक्तूबर अंतिम सप्ताह में भारतीय जातीय कांग्रेस अधिवेशन मुम्बई में अनुष्ठित हुआ था। जिला हरिजन सेवक संघ के सम्पादक नृसिंह गुरु , सदस्य महावीर सिंह और नागरमल केड़िया तथा हरिजन कांग्रेस कर्मी कष्टराम गंडा उसमें शामिल हुए थे।

सन १९३५ में भारतीय जातीय कांग्रेस की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हरिजनों की सेवा के लिए अनेक काम हो पाया था। लक्ष्मीनारायण मिश्र पंचपड़ा में हरिजन आवास (हरिजन होम) का उद्‌घाटन किया था। विभिन्न गांवों में हरिजनों के लिए विद्यालयों की स्थापना हुई था। कूआँ तालाव भी बने थे।

१९४१-४२ से हरिजन सेवा समेत कांग्रेस के सभी संस्कार कार्यक्रम रुके रहे । द्वितीय महासमर की विभीषिका से विश्व निपीड़ित ,अस्थिर था। तब कांग्रेस के भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण सभी भारतीय नेताओं को हिरासत में ले लिया गया । तब कांग्रेसियों के दिशादर्शन के लिए एक भी नहीं रहे। सब के मन-प्राणों में उत्तेजना भरी हुई थी। तत्पश्चात भारत की आजादी लगभग निश्चित हो गयी थी। सभी भारत के स्वरूप निर्णय के लिए विचार-व्यस्त रहे । उससमय देश में सांप्रदायिक दंगों के कारण एक भयानक विपद्पूर्ण स्थिति बनी रही थी। उस स्थिति में संस्कार कार्यों का प्रश्न ही नहीं था। १९४७ अगस्त १५ को भारत एक आजाद सार्वभौम गणतांत्रिक राष्ट्र बना। गांधीजी में आशा बनी रही थी कि आजादी के बाद नवभारत के निर्माण के लिए कांग्रेसी कार्यकर्त्ता नेतागण संगठनात्मक कार्यक्रमों में आत्मनियोग करेंगे । पर उनकी वह आशा आशा ही बनी रही । कांग्रेसी नेता गण स्वार्थ और क्षमता के मोह से दिगभ्रमित थे। सच्चे कार्यकर्त्ता राजनीति से दूर रहे । कुछेक विद्रोही नेता और कर्मी छेटेमोटे दलों की प्रतिष्ठा की । संस्कार कार्यक्रम राजनैतिक स्वार्थकेन्द्रिक होने लगा। देश जिस अंधेरे में था उसी अंधेरे में बसा रहा ।

आजादी के पश्चात जिस प्रकार अपरितोष पीड़ित रहे गांधीजी , आपातत: वही अतृप्ति पश्चिम ओड़िशा के गांधीजी नृसिंह गुरु को भी सताती रही । शायद १९४७ अगस्त १५ से २. अक्तूबर १९८२ तक और सम्भवत: उनके प्रभुलीन होने तक । उसी असन्तोष जन्य प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति थी उस दिन गुरुजी की , गांधी जयन्ती के अवसर पर उनके संक्षिप्त संवोधन के अन्तर्गत । जो गोरे साहब भारत के प्रशासनिक सिंहासनों से उतर आए उसी पर अधिकार जमाए बैठ जानेवाले काले साहबों के सामने वे ही धारा और प्रक्रिया रही जिसे संशोधित, परिमार्जित करते हुए भारतीयता के अनुकूल करने कि आवश्यकता ही विस्मृत होगयी । गांधीजी की इच्छा और आशा थी कि वह संस्कार उन्हीं अनुभवी , विचारवान, चिन्तक नेताओं के द्वारा सम्पन्न होगा । वे दीन, दु:खी, असमर्थ, अस्वच्छल, अविकसित आम और सामान्य जनसमूह के नजदीक आकर आजादी का क्या अर्थ है, गणतंत्र क्या है, वह तो समझाएँगे ? पर वह हो नहीं पाया। भारतीय आवादी के अस्सी प्रतिशत तो वे लोग थे जिनके पास सही मायने में न घर था, न कपड़ा, न ही दो वक्त की रोटी । सिंहभाग बालक तो वे थे आधी अधूरी शिक्षा पाए, जिनकी शिक्षा ही आर्थिक अस्वच्छलता, परिवार की असमर्थता के कारण पूरी नहीं

हो पायी थी, उन में अनुराग, प्रतिभा, मानसिक शक्ति के रहते; वे शिक्षायतनों से बाहर निकल कर करते तो क्या भी करते ! दो कौर कमाने के फिक्र में बाप से हाथ मिलाकर या तो मेहनत करते या दिशाभ्रमित हो भटकते फिरते । वह आजादी क्या उन बाकी के बीस प्रतिशत की मिल्कीयत थी ?

यह प्रसंग इस ग्रंथ के अन्तर्गत विश्लेषणीय प्रसंग नहीं है । फिरभी, जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह कि वैचारिक स्तर पर महात्मा गांधी और गुरुजी समान थे। विचरण क्षेत्र सब के लिए समान नहीं होता, अवसर , सुयोग,आदि आदि तो भिन्न होंगें ही उस विचार से दृश्यमान जगत, सामाजिक परिसर गुरुजी के लिए सीमित था और गांधीजी के लिए विश्वमय था। किन्तु , दोनों असीमित विशाल हृदय के अधिकारी थे। चिदाकाश की अनन्त व्याप्ति थी। भूमि और भूमा के लिए विचार में समानता थी। गांधीजि के वैचारिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत एसी कोई एक भी योजना नहीं थी , जिसमें गुरुजी की संश्लिष्टि नहीं थी । भेद था व्यापकता और सीमितता में ।

प्रो.गिरधारी प्रसाद गुरुजी ने महात्मा और गुरुजी की भावात्मक तुलना के रूप में अपनी रचना (The Guru & The Mahatma - Ch.V-THE MAHATMA AND THE GURU)) में बिलकुल सही कहा है कि दोनों गांधीजी और गुरुजी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की दृष्टि से परम वन्दनीय सम्माननीय पुरुष थे। क्यों कि दानों में पारंपरिक ज्ञान था। उच्चाकांक्षा थी देश के लिए , मानव और मानविकता के लिए । देश की आजादी की लड़ाई में मर मिटने को तैयार और वह संग्राम संघर्ष वह कि आगे चल कर मानव शोषित न हो स्वावलम्बी हो , सही मायने में स्वस्थ शिक्षित हो , स्वाभिमानी हो, समाज में एक सम्मानास्पद जीवन व्यतीत करते हुए । अपना आजाद देश, लोकतांत्रिक शासन , सब कुछ अपना , सब का समान रूप में नागरिक अधिकार , सुख , सुविधाएँ , आर्थिक विकास, प्राकृतिक संपदा की सुरक्षा और सदुपयोग, कृषि में खेतिहर की वर्चस्वता, ग्राम्य स्वराज वेसे अप्रमित सपने थे दोनों के। वह स्वाधीन देश के आगामी पुरुषों के लिए दोनों में वैचारिक समानता थी। मानविकता तो असीमित है और उसे सीमित शब्दों में अभिव्यक्त करें तो वह होगा मानव समाज में पारस्परिक सहयोगी परिपूरकता, सहभागीता, सुख-दु:ख , हर्ष-विषाद को एक-दूसरे में बाँटने की इच्छा, व्यथा पीड़ा तक भी सामान्य आश्वासन में सेवा से घट न जाए फिर भी सहनीय हो जाती है और सुख में सहभागिता आनन्दवर्द्धक होती है । यह एक ऐसी स्थिति होती है जहां देनेवाला समर्थ होता

है और पानेवाला असमर्थ, लाचार। परात्पर प्रभु की इच्छा भी वही है। वे दीनबन्धु कहलाते हैं । क्या आप किसी धनीबन्धु नामवाले को जानते हैं ? महात्माजी तथा गुरुजी दोनों अपने खातिर जितना नहीं उससे कहीं अधिक औरों के लिए जीवित थे, नि:स्वार्थ निष्ठापरता में उद्यमी थे कर्मनिष्ठ थे । भेद वही क्षेत्र असीमता और सीमितता का । दोनों ब्रह्मचारी थे, तपस्वी, सन्यासी थे, वैरागी थे । दोनों में शीर्ष यथार्थता की पहचान थी। अर्थात् वे दोनों ब्रह्मबिद् ब्रह्मण थे। गुणकर्मो से । महात्मा तो वेसे थे जो जग को उद्भासित करदें , कि कोई आए और अपने लिए एक अलोकित पथ चुन ले और गुरुजी थे कि उस रोशनी को बटोर कर सही राह दर्शाएँ अपने ही कर्मण्यता के अन्तर्गत प्रयोग करके। समाज के लिए दोनों की क्रियाशीलता अभिन्न थी । गांधीजी के विचार चिन्तन और उसी के कार्यान्वयन के लिए गुरुजी में तत्परता ! गुरुजी के लिए परीक्षा प्रयोग की कर्मभूमि को सीमति अर्थों में सम्बलपुर मानें तो गांधीजी की विशाल भूमि थी भारत की पवित्र माटी।

प्रो.गुरुजी के शब्दों में - Mohandas Karamchand Gandhi, through his prolonged efforts and in-depth experiments, came to acquire the characteristic qualities of both a Mahatma and Guru . But, never for a moment did he, the traditional Mahatma or the Guru , think it necessary or right to forsake the world . His was the more difficult job because he wanted to acquire the attributes of a Mahatma or a Guru while still having a normal life . Tapas or ascetic practices he performed , non- attachment or Sanyasa he practised and detachment or Vairagya he gained while living through the flux of life. Hence he was an exceptional Mahatma . And unlike many others, he did not want to become a Guru in the traditional sense of the term . He was and remained very much a man of the world and wanted it to change in order that it become a better and happier world for men to live in. This was the reason why thousands of people were attached towords him as towards a magnet and though the idea of playing the role of a traditional Guru never crossed his mind , thousands of individuals, in fact , treated him as their Guru and wanted to project themseves as his disciples .

This was the secret of his exceptional success in public life , this was magic of his personality which transformed a whole nation of thirtytwo million people and helped them achieve political independence for the country through peaceful and non-violent means .

वास्तव में महात्मा गांधीजी तथा गुरुजी दोनों सन्यासी, वैरागी होते हुए भी संसारत्यागी नहीं थे। कैसे भी हो सकते हैं ! उस संसार में उन्हें तो रहना ही होगा , जिसे

वे सुधारना चाहते थे कि वह एक उन्नत , भव्य , सुखदायी क्षेत्र हो , मधुमय हो भेदरहित, ईर्ष्या असूया द्वेषशून्य संसार हो हर प्रकार विकसित। समग्र देश को एकात्म अभिन्नता के सूत्र में पिरोने की सफलता, अहिंसक प्रयोग के परणाम स्वरूप भारतभूमि जो राजनैतिक आजादी प्राप्त हुई वह विश्व भर के लिए एक विस्मयकर आदर्श कालातीत उदाहरण है। उसी ध्येय से, उन्हीं योजनाओं को सकारात्मक रूप प्रदान करने की अकुण्ठ तत्परता थी नृसिंह गुरुजी में , जिस के लिए अपना नीजी संसार बाधक नहीं था। वह गौण था और लक्ष्य की भूमिका अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण थी ।

सम्बलपुर के हजारों स्वतंत्रता संग्रामियों में गांधीजी के विचारों के दो प्रतिबद्ध अनुयायी थे, एक भेड़ेन मानपुर के पण्डित घनश्यम पाणिग्राही जो ज्येष्ठ थे, जिनसे अनुप्रेरित हो भागीरथी पट्टनायक, जम्बोवती पट्टनायक, चिन्तामणि पूजारी , चन्द्र शेखर बेहेरा सरीखे निष्ठापर योद्धा आये और दूसरे है नृसिंह गुरु , वे कनिष्ठ थे । उन्ही के संगी साथी थे लक्ष्मी नारयण मिश्र , प्रभावती देवी , पार्वती गिरि , दयानन्द सतपथी और अनेक। उम्र के नाते दोनों बड़े छोटे होने के बावजूद दानों में अन्तरंग घनिष्ठ मित्रता थी, क्यों कि दोनों गांधीजी के आचार, आचारण, कर्म, चिन्तन, प्रवृत्ति, संस्कार आदि के अड़िग अनुयायी होने के कारण दोनों के सामाजिक और नीजी जीवन में समानता थी। इसी कारण से शायद दोनों के परिवार एकान्त आत्मीयता में बंधे हुए थे।

दोनों के शैशव काल और परवरिश की स्थिति भिन्न थी । फिर भी, दोनों की मानसिकता में काफी समानता थी । दोनों में सत्य और अहिंसा के प्रति प्रगाढ़ अंगीकार था, कर्म तथा चिन्तन साम्यता थी । दोनों सरल, आडम्बरहीन, सत्यनिष्ठ, निर्भीक, जनसेवी, देशप्रेमी, समदर्शी, छूआछूत के विरोधी, अभेदी, अक्रोधी, ईर्ष्या असूया रहित, निस्वार्थ थे और उन दानों में एक भी दुर्गुण या दूरभ्यास नहीं था। यही जीवन की चिन्तन रीति न केवल उनके संग्रामी जीवन की थी, वही अन्ततक बनी रही थी ।

गांधीजी के ध्येयादर्शों से अनुप्राणित होते ही गुरुजीने खादी की एक घुटनों तक को ढंकनेवाली धोती और चद्दर के अलावा कुछ और वस्त्र पहनते नहीं थे । कंधे पर से लटकी एक झोली होती । गांधीजी के स्वदेशी तत्वों को निष्ठा से अपनाये हुए होने के कारण आयातित शक्कर के बदले गूड़ का इस्तेमाल करते थे। मशीन में प्रस्तुत छाते के बदले ताड़पत्री छाते आढ़ा करते थे। नंगे पैर चला करते हर समय। उनके साथ सदा एक तकली होती, बाहर हों और समय मिले तो सूत काटने के लिए और घर पर नियमित

चरखे से ।

गुरुजी शुद्ध शाकाहारी थे । एक नैष्ठिक परिवार में जन्मित गुरुजी स्वयं भी रुढ़िवादी थे। उनकी मस्तक शेभित एक चोटी थी जो गांठ बंधी रहती थी। वे भोर करीब चार बजे जागते और शौच स्नानादि से निवृत्त होकर चन्दन तिलक करके पूजा करते जिसके उपरान्त नित्य एक अध्याय गीता पाठ के साथ कवि गंगाधर मेहर तथा कविसम्राट उपेन्द्र भंज की अध्यात्म रचना (विष्णुपदी विष्णुपद इकार भेद शबद , तरणीरे गतागत तहिं विदित - विष्णुपदी-गंगा , विष्णुपद दानों समान , बस एक भेद है मात्रा का । दोनों को पार करने के लिये भक्ति समर्पणरूपी नौका आवश्यक है । एक इस पार से उस पार, एक इह से परलोक)। से एक न एक का सस्वर पाठ करते थे और सामान्य कुछ लघु आहार के पश्चात घर से निकल पड़ते और वृद्ध काल में भी कभी कभार मध्य रात्री तक काम करते रहते थे । गंगाधर मेहर की तपस्विनी काव्य से वह छन्दमयी मधुर रचना मंगले अइला उषा उनकी प्रिय रचना थी (हिन्द अनुवाद में - राग चोखि के छन्द निवद्ध -

'' आई सुमंगली उषा विकच राजीवदृषा
जनकी दर्शन तृषा धरे मन में
कर पल्लवों में नीहार मुक्ता लिए उपहार
सती-निवास बाहर हो आंगन में
मधु मधुर काकलि कंठ से बोली
उठो सती राजरानी सुबह हो ली ''।।

और आश्विन में त्रिरात्रीय दुर्गोत्सव के समय वे दुर्गा सप्तशती का नित्य पाठ करते थे । फिरभी मनमें मैं एक ''नैष्ठिक ब्राह्मण हूँ'' का अभिमान उनमें नहीं था । वरन्, गांधीजी के विचारों से अनुप्राणित गुरुजी में ब्राह्मणेतर , यहां तक हरिजनों के लिए भी उनमें अपार स्नेह था। हरिजनो की वस्तियों की सफाई के साथ उन्हें गोमांस भक्षण और मद्य सेवन न करने के उपदेश दिया करते थे । यहां तक कि भागवत प्रवचन या पारायण के उपरान्त वे उन लोगों से साथ एकत्र प्रसाद-ग्रहण भी करते थे । वस्तुत: , वे उस समय हरिजन छात्रावास के अधीक्षक थे और अपने पितृपुरुषों के श्राद्ध के अवसर पर उन छात्रों को भी भोजन के लिए आमंत्रित करते थे । जब उन्हें रुढ़िवादी ब्राह्मणों ने जात्यान्तर कर दिया तब उन्होंने परवाह ही की नहीं। उनकी छात्रावास परिचालना के अवसर पर छात्रों के प्रति

अपार स्नेहमयी भूमिका का स्मरण करते हुए पुरातन अन्तेवासियों ने भावभीनी श्रद्धांजलि लिपिबद्ध हो गुरूजी के ग्यारहवें श्राद्ध दिवस के अवसर पर (१९९५) प्रकाशित स्मारिका में आयी हैं । वे छात्र हैं - श्री मोहन नाग, ओड़िशा सरकार के पूर्वतन मत्स्य विभाग और पशुपालन विभाग के मंत्री , स्व.पुरन्दर सासनी, श्री घनश्याम बेसान तथा योगेन्द्र महानन्द सरीखे सज्जन और प्रतिष्ठित व्यक्ति । लगभग सभी पुरातन अन्तेवासी गुरुजी की स्नेह सहानुभूतिशील व्यक्तित्व की याद करते हुए अभार मानते हैं । यहां तक कि बच्चों की सही देखभाल के लिए शहर के धनाढ्य व्यक्तियों से अर्थ चावल , रासन, सब्जियों की भीख मांगने से कतराते नहीं थे। गुरुजी बेहद अनुशासन प्रिय थे। रोज छात्रावास को आकर अन्तेवासियें की हर समस्याओं का हल तलाशने से चुकते नहीं थे । उसी अनुशासन के कारण अनेक छात्र आगे चलकर पद प्रतिष्ठा विभूषित हो मर्यादित हुए हैं । हरिजनों की पढ़ाई की व्यवस्था, वस्तियों के संलग्न विद्यालयों की स्थापना, हरिजनों के अधिकार के लिए निरन्तर संघर्षशील होना आदि नि:स्वार्थ कर्म के लिए गुरुजी वन्दनीय, प्रात:स्मरणीय हैं , यही स्व.योगेन्द्र महानन्द भी सदा कहा करते थे।

उत्कलमणि गोपबन्धु दास का लक्ष्य राजनीति नहीं था । उनके लिए महत्वपूर्ण कर्त्तव्य था दु:स्थ दलित,पीड़ित असहायों की सेवा और शैक्षिक विकास। भारतीय आजादी की चाह तो अवश्य थी । पूज्य गुरुजी ध्येय और निष्ठासे वही थे। १९४२ में कॉलेरा आक्रन्त मानपुर गांव में अन्य स्वयंसेवी मित्रों के साथ पहुंचकर घर घर चलकर होमियोपैथी दबाई से लोगों की चिकित्सा , गांव की सफई ग्राम्य तालाव तथा पानीय जल को निर्मल प्रदूषण रहित करने के प्रयास के हेतु बीमारी को फैलने से रोक कर बहुतों की जान बचाने में सफल हुए थे। १९४३ में लगभग वही हुआ। वे झारसुगुड़ा के निकटवर्ती एक गांव में पहुंच कर बड़े ही श्रम और धैर्य के साथ लोगों की सेवा और प्रतिशोधन तथा इलाज करने आए चिकित्साकर्मीयों की सहायता की थी ।

वे निश्चिन्त मन से अपनी सुविधा असुविधा के प्रति उदासीन रहते हुए दूरस्थ बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों में भी पहुंच जाया करते थे । १९८० में वे सम्बलपुर के बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों से दूर अविभाजित कन्धमाल फूलवाणी में बौद्ध उपखण्ड (सबडिविजन) ,अविभाजित बलांगीर के सोनपुर उपखण्डों में पहुंच कर उन्होंने राहत दिलाने को पहुंचे सरकारी गैरसरकारी दलों की सहायता की थी । सब से अधिक आक्रान्त बाउँसुणी में पहुंच कर स्वयं भी एक स्कूल के राहत कैंप में ठहर कर खाद्यरंधन वितरण आदि की निगरानी के

लिए उनमें अस्सी साल की उम्र में भी तत्परता थी। उनके लिए शायद वय बृद्धि बाधक नहीं थी, जिससे १९८२ में भी सम्बलपुर की तलहटी में बाढ़ पीड़ितों की जहां तक हो सके अक्लान्त सेवा की थी। भारतीय आजादी की लड़ाई में अपने को नौछावर करदेनेवाले और भी तो थे , किन्तु , जिस प्रकार गांधीजी , उत्कलमणि गोपबंधु भिन्न विचार और प्रवृत्ति के थे, उसी प्रकार पूज्य गुरुजी अपने व्यक्तित्व की अलग पहचान लिए सब से अलग ही थे।

सुवर्णपुर के प्रख्यात वाक्कील पत्रकार ,कोशल सम्वादिक संघ के सभापति श्री गोरेखनाथ साहू जी ने स्मृति-श्रद्धार्पित करते हुए कहा है '' स्वर्गीय नृसिंह गुरु काय मनों वाक्य से गंधीवादी थे। पश्चिम ओड़िशा के गांधी के रूप में विदित और सम्मानित गुरुजी के साथ उनका भाव-सान्निध्य निविड़ था तथा दोनों ''समाज ''समाचार पत्र के प्रतिनिधि होने के कारण कर्म क्षेत्र भी एक तरह से समान था । पूज्य गुरुजी सम्बलपुर के पत्रकार प्रतिनिधि थे और साहूजी की पत्रकारिता को लेकर कार्यक्षेत्र अब भी है सुवर्णपुर । १९८२ की सर्वग्रासी बाढ़ ने पश्चिम ओड़िशा भर में प्रलय रचाया था कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । हीराकुद बाँध की तलहटी में २४ घंटों की अवधि में २४ इंच की वर्षा के कारण लगभग सम्पूर्ण ओड़िशा ही त्रस्त-विध्वस्त होगया था। उस समय की विकराल बाढ़ की भयानक परिणति की तसबीरों को देखकर समाज के सम्पादक बाबूजी राधानाथ रथ एक शिशु की भाँति बिलखने लगे और लोतकार्दु स्वर में प्रार्थना कहें या अभियोग प्रभु से कहा - '' यह क्या दशा करदी आपने ओड़िशा की !'' मैंने बाबूजी से प्रार्थना की कि '' लोगों की सहायता के लिए समाज से रिलिफ राशि तो अवश्य पहुँचेगी, परिदर्शन के लिए आपको भी चलना होगा'' ,जिसे उन्होंने स्वीकारा था । रथजी के तत्कालीन व्यक्तिगत सचिव पत्रकार देव प्रसाद मिश्र और मैं समाज की गाड़ी में ''रिलिफ'' लेकर पहुंचे । बाबूजी का निदेश था , रिलिफ आवण्टन के समय सम्बलपुर प्रतिनिधि नृसिंह गुरु , सुवर्णपुर प्रतिनिधि गोरेख साहू के साथ पूर्वतन विधायिका श्रीमती सैरीन्द्री नायक गांव गांवों मे पहुंच कर लोगों तक रिलिफ पहुंचाएँगे। उस समय भीषण बाढ़ के कारण आवागमन की कोई अनुकूल स्थिति नहीं थी । सड़कों पर भी घूटनों तक जल स्रोत प्रवाहित था , कहीं कहीं तो उससे भी अधिक । बाढ़ पीड़ित लोगों के ध्वस्त घरों में न खाने को था न पीने के लिए स्वच्छ जल! नदी तटवर्ती अनेक गांव पूर्णरूप से जलमग्न थे। असहाय लोग कहीं ऊँची जगहों में खुले आसमाँ के नीचे शर्दी में ठिठुरते

पड़े रहे थे , इन्तजार करते कि कहीं से कुछ सहायता पहुंचे। जो रिलिफ पहले पहुंची वह समाज की ओर से थी । नृसिंह गुरु, सैरीन्द्री नायक और दूसरे स्वयंसेवियों के साथ मैं बहंगियों के जरिये सामान दूर दूर के गांवों में भी पहुंचते थे। पहली रिलिफ समाज की ओर से पहुंची तो लोग भावातुरता में रोने लगे । हमारी आँखें भी नम हो आतीं थी । उस समय **कोई नृसिंह गुरुजी को देखे तो सोचे कि खुद गांधीजी काम की मुआइना कर रहे हैं** । कुछ दिनों के बाद बाबूजी सुवर्णपुर पहुंचे । सुवर्णपुर टाउन हॉल में एक आम सभा में **नृसिंह गुरु** , लक्ष्मण शतपथी , सत्यानन्द होता आदि स्वतंत्रता सेनानी सम्मिलित हुए थे ।

२००२ में सोनपुर टाउन हॉल में गुरुजी की जयन्ती मनायी गयी थी । स्मृति कमेटी के सभापति के रूप में गोरेखनाथ साहू ने अध्यक्षता की थी । उस सभा में मंत्री श्री आनन्द आचार्य, सांसद श्रीवल्लभ पाणिग्राही तथा ''सम्वाद'' समाचार पत्र के सम्पादक श्री सौम्यरंजन पट्टनायक ने सभा को संवोधित करते हुए कहा था - नृसिंह गुरु की तरह एक सरल, आडम्बरहीन, त्यागी, नि:स्वार्थ तथा दक्ष पत्रकार विश्व भर में विरले ही होते हैं ।

राजनैतिक परिदृश्य में भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात स्वार्थी दुराग्रह तथा अनाचार से आहत ;राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों से विचलित हो कर नृसिंह गुरु, दयानन्द शतपथी और मंगलू पधान सरीखे स्वतंत्रता संग्राम में प्रतिबद्ध योद्धाओं ने १९५७ के चुनाव क्षेत्रों में ओड़िशा विधान सभा के लिए उतरने का निर्णय लिया था। जब कि भारतीय कम्युनिष्ट पार्टीने दयनन्द जी को प्रार्थी के रूप में चुन लिया, भारतीय जातीय कांग्रेस ने, उनके सदस्य होते हुए भी उन्हें दावेदार के रूप में नहीं चुना तो उन दोनों ने स्वाधीन प्रार्थी के रूप में चुनाव लड़ने का फैसला किया था । कट्टर गांधीवादी होने के कारण उनमें वह आशा थी और वे आगामी रामराज्य के सपने देखा करते थे तथा सोचा करते थे कि विधान सभा के अंदर दाखिला मिल जाए तो हो सकता है गांधीजी की रामराज्य की परिकल्पना साकार रूपप्राप्त होजाए ।

गुरुजी ने ५००/- जमानत की रकम के रूप में दाखिल कर के, कतरबगा चुनाव क्षेत्र के लिए प्रार्थी-पत्र पेश कर के अपनी सायकल पर सवार हो इलाके भरमें घूम कर लोगों से मिलने समझाने लगे । वह सायकल तो उनकी बचपन की पुरानी साथी थी । चुनाव के लिए उस ५००/- के अलावा एक पाई तक का खर्च्च उन्होंने किया नहीं न

कोई सभा, पोस्टर, प्रचार पत्र अदि छपाई की व्यवस्था की। उनके समर्थन सहायता के लिए न कोई था न उनके पास कोई गाड़ी ही थी , या माइक्रोफोन ! वे खुद जितना हो पाया लोगों से मिले , स्थिति अगाह करते हुए समझाने लगे।

भारतीय चुनाव के लिए क्या करना है कैसे वोट डालना है, किसे वोट देना है आदि की शिक्षा तो नेताओं से जनता को मिल ही रही थी; अत: स्वाभाविक ही है कि नृसिंह गुरु सरीखे कोई चुनाव की लड़ाई जीत कर आए। परन्तु,उनकी जमानत ही जफ्त हो गयी और उन्हें बस १४५० लोगों से समर्थन मिला था । कम्युनिष्ट पार्टी की ओर से चुनाव लड़ कर देवगड़ में दयानिधि शतपथी १८८१ वोट पाकर जीत नहीं पाए और सम्बलपुर के स्वतंत्रता-सैनिक रेमेण्डा के आदिवासी मंगलू प्रधान का भी वही परिणाम हुआ था ।

उन तीनों आजादी की लड़ाई के निष्ठापर सैनिकों की पराजय एक तरह से प्रमाण ही था कि भारतीय राजनीति में, दस सालों के अन्दर बेहद बदलाव आए हैं और अब गांधीजी के सत्य, अहिंसा आदि को लेकर विचार में कोई दम ही नहीं है , जैसा कि भारतीय आजादी के पूर्व था ।

मैं यहाँ प्रो.गुरु की उक्तियों का उद्धरण देना चाहूँगा। वे लिखते हैं -

Nrusingha Guru realized during this election that elections in India could not be won with the promises that abstract ideals gave for the future. Hard money power , crocodile tears for the supposed plight of the people and false promises for the future were needed to win elections . He further realized that his experiment with principles vis-a-vis public life in India had failed . He therefore , decided to carry on his personal life on Gandhian lines with double vigour in the remaining years of his life.

अब तो स्थिति और भी विकट भयानक है । जैसा कि प्रो.गुरु ने कहा है कि उसके बाद से नृसिंह गुरु ने गांधीजी के आदर्शों को पूर्णप्राण से अपनाते हुए और भी दृढ़ता से सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन में सत्य पालन और अहिंसक आचरण ही को श्रेय माना। दैनिक ओड़िआ अखबार 'समाज' के समाचार सम्पादक उदयनाथ षडंगी ने १९९५ की स्मारिका में प्रकाशित लेख के अर्न्तगत दो घटनाओं के विवरण देते हुए कहा है -

'समाज ' संवाद पत्र के सम्पादक स्व.डॉ.राधानाथ रथ एक बार ओड़िशा सरकार के कैबिनट मंत्री बने । नृसिंह गुरु उनसे मिलने कटक पहुंचे । क्यों कि उस समय रथजी भुवनेश्वर में रहते थे, गुरुजी और उदयनाथ षड़ंगीजी भुवनेश्वर के मंत्री निवास में पहुंचे और चपरासी के हाथों अपना परिचय पत्र भेजा तो कुछ देर के बाद बुलावा आया । दोनों कार्यालय कक्ष में पहुंचे तो डॉ.रथ ने अपने प्रख्यात तथा सुप्रतिष्ठित अखबार के अद्धनग्न सम्बलपुर प्रतिनिधि नृसिंह गुरुजी को गौर से देखा और अपने क्रोध परसे काबू खो कर कहा - ''समाज' उन जैसे एक अशालीन पोषाकवाले सम्बलपुर प्रतिनिधि को रखना ही नहीं चाहेगा क्यों कि एक प्रतिनिधि को अक्सर बड़े व्यक्तित्व सम्पन्न लोगों से ५८, पदस्थ कार्यकर्त्ताओं से मिलना होता है । उस समय कार्यालय कक्ष में और भी पदस्थ कार्यकर्त्ता, क्लर्क और भेंट करने आए लोग मौजूद थे। वे मंत्री जी के उस रोषपूर्ण उद्गार सुन कर पलट कर उन खद्दर धारी, घूटनों तक की धोती और बदन पर चद्दर भर लपेटे हुए नम्र व्यक्ति की ओर मुड़ कर देखा। अब नृसिंह गुरु से जबाव सुनने की बारी थी। वे सब गुरुजी को उत्कंठित आंखों से ताकते रहे थे कि अविचलित, नम्र पर अत्यन्त दृढ़ स्वर में , उन सब को स्तब्ध करते हुए गुरुजी ने मंत्री महोदय से कहा - यदि उनकी पोषाक समाज प्रतिनिधि के माफिक लगती नहीं है तो वे वरन् उनके लिए प्रतिनिधि पद ही को तजना श्रेय होगा, पर उस पोषाक को नहीं । मंत्री ने सोचा नहीं था कि उस प्रकार एक उत्तर उन्हें सुनना होगा। रथजी ने गुरुजी से आवास के अन्दर चलने को कहा, जहां भोजन करते समय समस्या पर सही रूप में बात कर पाएँगे । रथजी को अपनी भूल का एहसास हुआ और उन्होंने जो अनचाहे घटित होचुका था उसे सुधारने के प्रयास से गुरुजी को भोजन के लिए आमंत्रित किया था ।

यह नहीं कि बाबूजी डॉ.राधानाथ रथ के मन में स्व.गुरुजी के प्रति श्रद्धा नहीं थी। उनके लिए गुरुजी एक अनन्य सम्मानास्पद व्यक्तित्व थे । सुवर्णपुर के प्रख्यात वकील पत्रकार श्री गोरेखनाथ साहू , जो ''समाज '' के सोनपुर प्रतिनिधि है, उन्हों ने,एक बार प्रसंग क्रम से १९८२ की भयानक विध्वंसी बाढ़ से '' दलेई घाई '' धसकने से प्रभावित तत्कालीन अविभाजित बलांगीर जिले में सोनपुर तथा वीरमहाराज पुर के विवरण बखानते हुए पश्चिम ओड़िशा के गांधीजी नृसिंह गुरु का भी स्मरण किया था। बताया कि सानपुर में बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए समाज राहत कोष से सर्व प्रथम अनुदान प्राप्त हुआ था, जिसका सारा श्रेय नृसिंह गुरुजी को जाता है । उन्हीके अनुरोध पर

स्वयं रथजी भी परिदर्शन के लिए आये थे । गुरुजी के साथ सम्बलपुर से सैरिन्ध्री नायक आदि आएथे । सेनपुर में एक स्वयं सेवक मण्डल की सहायता मिली, जिसके अध्यक्ष थे गोरेख जी । परिणत वय में भी गुरुजी की कर्मतत्परता, अथक श्रम, सेवा के प्रति समर्पित भावना अवश्य ही एक अनुप्रेरक दृष्टान्त है ।

जैन सिद्धान्तों के अनुसार , चाहे वह दिगम्वर हो या तेरापंथ, अहिंसा की साधना एक तपस्या की प्रक्रिया है । काम, क्रोध, लोभ, मोह , मद, मात्सर्य , जिन्हें आचरण के अन्तर्गत रिपु या सद्‌गुणों के विपरीत शत्रु माना गया है , उन पर विजय प्राप्ति उस अहिंसा-तपस्या की सिद्धि मानी गयी है। तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्य तुलसी के पट्टशिष्य आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने प्रवचन-संकलन '' कैसे सोचें ?'' ग्रंथ में ''अहिंसा'' की व्याख्या करने के पश्चात भारत भर में महात्मागांधीजी को ही सच्चे अहिंसक तपस्वी के रूपमें , उदाहरण केरूप में प्रस्तुत किया है। ''आचार ''तो उल्लिखित होकर शास्त्र संहिताओं में होते हैं , पर वे आचार जब तक मानव में आचरण के रूप में अनुसृत होते नहीं हैं, तब तक वे निरर्थक है । और गांधीजी के आदर्श विचारों के कट्टर अनुयायी होने के नाते पूज्य गुरुजी भी सच्चे अहिंसक माने जाने के योग्य हैं। गुरुजी के चरित्र स्वभाव पर अन्ततः क्रोध और लोभ की तो कोई प्रभाव प्रतिक्रिया नहीं थी। निम्नोक्त घटना उसी के समर्थन में एक दृष्टान्त है -

जहां कहीं भी गुरुजी घर से बाहर जाते थे साथ में बिछाने ओढ़ने के लिए चद्दर और एक तकिया लेकर चलते थे । कटक के ''समाज '' के काम से पहुंचे तो उनके साथ ये सामग्रियां होती थीं क्यों कि उससे किसी और को परेशान किये बगैर किसी कोठरी के अन्दर कोने में जमीन पर आराम से सोया जा सकता है। एक बार शाम को समाज दफ्तर में काम निवटा कर वे समाज के मैनेजर महोदय से कह कर गये थे कि, बाहर कुछ काम है । हो सकता है वे कुछ देर से लौटें । आप जरा पहरेदार को बता देंगे कि मुझे नहीं रोक कर अन्दर दाखिल होने देगा । रात को ११ बजे के आस पास उनके लौटने पर गोपबन्धु भवन के चौकिदार ने उन्हें अंदर दाखिल होने दिया नहीं। कहा कि मैनेजर साहब ने उससे कुछ कहा नहीं है और न उसके पास देर रात को पहुंचनेवाले किसी मेहमान के बारे में काई सूचना है। गुरुजी चौकिदार को मैनेजर साहब को खबर कर देने के लिए कह भी सकते थे, पर उन्होंने वह नहीं किया और चुपचाप वहां से गोपबन्धु बाग के अन्दर आकर गोपबन्धु की स्थापित मूर्त्ति के एक कोने में चद्दर ओढ़े

आराम से सोगये । पर, दुर्भाग्य तो उनके साथसाथ चल रहा था। बाग की रखवाली करनेवाले ने सोचा कि कोई ऐरागैरा आवारा होगा और गस्तखोरी करनेवाले पुलिस चपराशी को कहा तो उसने गुरुजी को ले जाकर लालबाग थाने की हाजत में बन्द करवा दिया। उस समय भी गुरुजी ने थाने में कर्मरत पुलिस इन्सपैक्टर से कुछ कहा नहीं और हाजत के अन्दर आराम से चद्दर बिछा-ओढ़ कर सोगये । हाजत की कोठरी के अन्दर उष्मा थी भी जिससे गुरुजी को किसी भी परेशानी का सामना करना नहीं पड़ा।

सुबह पूछताछ से उनके परिचय की जानकारी मिली । उदयनाथ षड़ंगीजी चल कर उन्हें थाने से *समाज* के दफ्तर को ले आये । *समाज* दफ्तर को लौटते हुए गुरुजी ने षड़ंगी जी से मुसकुराते हुए कहा खुला गोपबन्धु बाग से बन्द हाजत रात बिताने के लिए सुखद था। गुरुजी का वह अविचलित उदासीन वर्त्ताव अपने आप में अत्यन्त प्रभावशाली था कि मानों मैनेजर से लेकर उस चौकिदार तक को अपनी गलती का एहसास होगया, सीख मिली, हो सकता वे जिन्दगी भर वह न भूलें और फिर वह भूल न करें। किन्तु, नृसिंह गुरुजी बस यही चाहते थे कि कहीं एक जगह मिल जाए रात काटने को, चाहे वह गोपबन्धु भवन हो, गोपबन्धु बाग हो या लालबाग हवालात या कोई और।

आजादी की लड़ाई में वह कटिबद्ध योद्धा, गुरुजी, बाद में जो पत्रकार बने वह कोई कमाई के लिए नहीं, वरन् उसमें लोगों की एक खास विधा से मदद करने का इरादा था। मकसद था कि समाज में सचेतनता का जागरण हो । अंधविश्वास दूर हो, भाईचारे की प्रतिष्ठा हो और साथ ही लोगों की आवश्यकता, समस्या की खबर प्रशासन तक पहुंचे। लोगों में उचित अनुचित विचारों की जागरुकता आए तो सामाजिक जीवन सुन्दर हो आदि के विचार तो गांधीजी के हैं , निःस्वार्थ समाज सेवा के अर्न्तगत। उसी की प्रतिबद्धता के कारण । और कई जगहों में विशेष कर खोजी खबर जुटाने के लिए उन्हों प्रतिकूल स्थिति का सामना भी करना पड़ता था । जानकारी लेकर, समाचार के रूप में लिख कर तत्काल प्रकाशन के लिए कटक मुख्य कार्यालय को भेजने की जिम्मेदारी उन्ही की थी । गुरुजी का कोई नीजी मकान सम्बलपुर में नहीं था, न उन्होंने कभी एक बनाने बनवाने की कोशिश ही की । उसी बजह से गुरुपालि से सम्बलपुर तक आने-जाने के लिए साठ मिल का रस्ता तय करने के लिए वे कभी भी वीतस्पृह थे नहीं। देर से उन्हें एक सरकारी मकान मिला,सम्बलपुर में ।

अखबारों की परिकल्पना तो इस लिए हुई थी कि सामाजिक आवश्यकता की

पूर्त्ती के लिए व्यक्ति सचेतनता जागरित हो । क्यों कि वह आवश्यकता किसी एक की नहीं, सब की होती है । साथ ही शासक और प्रशासनिक प्रक्रिया भी उन जरुरतों की पूर्त्ती के लिए प्राप्त जानकारी के आधार पर ठोस कदम उठा पाए । इस दिशा में अखबारों का दायित्व बेहद महत्त्वपूर्ण है । अतः एक जनतांत्रिक राज्य के प्रतीकात्मक अनुशासन श्रृंखला सौध के एक सुदृढ़ स्तम्भ कहलाता है अखबार या पत्रकारिता, चिन्तकों के विचार से । आजादी के प्राक्काल में इसी चौथा स्तम्भ की भूमिका थी आम जन समुदाय की जड़ तक में भी गणतांत्रिक सचेतना का बीजारोपण हो। वह भी एक कारण है कि भारत में गणतंत्र प्रक्रिया मौजूद है जब कि साथ आजाद हुए पड़ोशी राष्ट्रों में हो नहीं पाया। भारत में यह नहीं कि आर्थिक विकास हुआ नहीं है, औद्योगिक तरक्की हुई नहीं है, होने पर भी लाखों करोड़ों लोग अब भी नंगे भूखे, अनपढ़ , बीमार जिन्दगी बिताने को मजबूर है। इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है राजनैतिक दुराग्रह, लालच, व्यवसायिक मुनाफाखोरी, प्रशासनिक अनीति अनाचार और सब से तीव्र है उदासीन असचेतनता। अब तो उस चौथे स्तम्भ को तो और भी मजबूत होना होगा, खबरों के प्रसारण ही नहीं मानों गणतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ की भूमिका निभाते हुए पांचवा स्तम्भ बन कर शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, संरक्षण, भूजात, अरण्य जात द्रव्यों के सही उपयोग, नागरिक अधिकार को लेकर जागरुकता आदिआदि प्रसंगों को लेकर लेखों के माध्यम से कर्म सम्पादन हेतु अध्ययनशील, हमदर्द , प्रतिबद्धता से निष्ठा से प्रयत्नशील होना होगा। वही ध्येय के रूपमें गुरुजी करते आए। खबरों के प्रसारण ही नहीं समाज में मानसिक तथा नैतिक आचरणों में संस्कार के लिए तत्पर थे अखबारों के स्तम्भों के जरिये, लेख टिप्पणियों के माध्यम से।

पूज्य गुरुजी अपनी उत्कृष्ट पत्रकारिता के कारण विभिन्न अनुष्ठान संस्थाओं के द्वारा सम्मानित हुए थे । पत्रकारिता के क्षेत्रों में आप एक आदर्श और प्रतिपद्ध पत्रकार कहलाते थे। खबर की सत्यनिष्ठ जानकारी लिये बिना वे उसे प्रकाशित होने नहीं देते थे । उनके द्वारा प्रेषित एक भी समाचार के विरोध में कभी किसीने कोई प्रतिवाद किया नहीं है । १९२९ में लवण सत्याग्रह के प्रारंभ के पश्चात गुरुजी ने समाज के लिए समाचार भेजना शुरु किया था । उन्हें १९३२ में समाज के पत्रकार के रूप में आनुष्ठानिक स्वीकृति मिली थी इसके अलावा आप ने ३० सालों तक सम्बलपुर में Associated Press of India का कार्यभार सँभाला था । यह संस्था बाद में Press

Trust of India के नाम से विदित हुई । १९३७ असेम्ब्ली चुनाव के समय आप जागरण सम्वाद पत्र के सम्पादक थे ।

१९२९ से अपने देहान्त (१९८०) तक गुरुजी समाज के प्रतिनिधि पत्रकार और एजेण्ट , निष्ठापरता में बने रहे और उन्हीं के उद्यम ही से पश्चिम ओड़िशा में समाज पत्रिका बहु प्रचारित प्रसारित अखबार के रूप में प्रतिष्ठा पायी थी । उसके लिए उनकी श्रमपूर्ण भूमिका असाधारण थी । एक समय एसा भी था जब समाज कहें तो लोग नृसिंह गुरु समझते थे। किन्तु विडम्बना तो यह है कि जिस समाज के लिए गुरुजी ने जीजान से कोशिश की थी वही संस्था ही एक तरह उनकी देहावसान के लिए कारणों में एक का कारण बनी। यहां तक कि गुरुजी के देहान्त के पश्चात उनकी स्मृति रक्षा हेतु सहायता सहयोग के लिए स्मृति सुरक्षा कमेटी के आवेदन अनुरोध भी समाज ने स्वीकार नहीं ।

गुरुजी में पत्रकारिता के लिए सत्यनिष्ठा, कर्मतत्परता, निर्भीक दांभिकता, अदा उत्साह तथा वे ध्येय के प्रति उत्सर्गीकृत जीवन जीनेवाले महापुरुष थे। उनके व्यक्तिगत जीवन में घटित हो सामान्य मनुष्य के लिए विस्मयकर दो घटनाओं का उल्लेख करना चाहूँगा-

नृसिंह गुरुजी अपने को आजादी की लड़ाई में पुर्णरूप से समर्पित करने के कारण एक तरह से घर परिवार के प्रति उदासीन ही थे । पारिवारिक सुख-दुःख, होनी-अनहोनी से प्रभावित तो होते अवश्य थे पर उससे विचलित और कर्त्तव्यच्यूत होते नहीं थे । १९४२ आन्दोलन के समय उन्होंने कारावरण किया था. उस समय उनकी छ साल की बेटी दिनेश्वरी अस्वस्थ थी । तब उसे पेरोल में उसे देखने जाने की अनुमति भी पुलिस से मिली नहीं । तीन दिनों की अस्वस्थता ही में उसका देहान्त हुआ । जेल से बेटी के अन्तिम दर्शन के लिए आने की अनुमति लेकर वे आए । गुरुजी पुलिस अधिकारियों के साथ आए और लाड़ली बेटी को पुष्पार्पित करके उपस्थित आत्मीय स्वजनों को लोतकाप्लुत दृष्टि से देख कर पुलिस के साथ जेल हिरासत में लौट आये थे । तब समय कुछ ऐसा था कि शोक सन्तापिता पत्नी या किसी और को कुछ कहते जताते हुए सान्त्वना ही दे बाते, वह सम्भव नहीं हुआ ।

इस घटना की याद कर के उल्लेख करते समय उत्कलमणि गोपबन्धु दासजी के जीवन में घटित उस मार्मिक घटना भी मन को झकझोरने लगी है । एकमात्र पुत्र बीमार था और सुआण्डो में सही इलाज नहीं हो पाने के कारण उसे चिकित्सा के लिए पुरी लाया

गया था। तब लगातार वर्षा थी। स्थिति की प्रतिकूलता के बावजूद कुछेक हितैषी, सहकर्मी, दु:खी पत्नी और स्वयं दासजी थे। तब खबर मिली कि रसकूल्या नदी में प्रखर बाढ़ के कारण तटवर्त्ती कुछेक गांवों के नामोनिशान ही मिट गये है । जमीनों की फसल पर भी बालू पुत गया है । काफी जान् माल का नुकसान हुआ है । गृहपालित पशु तो पशु लोगों के लिए भी किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था करपाना सम्भव नहीं था। कहींकहीं ऊँची जगहों में खुले आसमान के नीचे झड़ तूफान वर्षा में बचे हुए लोग, बाल बच्चें को लेकर भूखे प्यासे आसन्न मृत्यु की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं । सुनकर दासजी निकल पड़े। उनके निकलते समय बुंजुर्ग हितैषियों ने टोका भी तो जवाब में उन्होंने कहा , मैं यहां रुका रह जाऊँगा तो मन भी लगेगा नहीं । एक बात और भी कि मुझसे कुछ भी नहीं हो पाएगा, क्यों कि मैं कोई चिकित्सक नहीं हूँ और आप लोग मुझसे भी कहीं अधिक दायित्व सम्पन्न हैं । वे जब लोटे, तब तक बेटे का देहान्त हो चुका था । किसीने कुछ भी नहीं कहा , पर पत्नी को दिलासा देते हुए उन्होंने कहा था - यहाँ तुमने एक बेटा खोया है , जाओ चल कर देखना रसकूल्या के तटवाले तुम्हारे हजारों बेटों को ईश्वर ने पुनर्जीवन दिये हैं । एक कविता है ओड़िआ कवि राधामोहन गडनायक जी की, इसी घटना की स्मारिका के रूप में। पढ़ते समय अपने आप पाठक की आंखे भर आती है और उन त्यागी महापुरुष के आगे मथानत हो जाता है । आज उस जैसी घटना शायद पुर्नघटित नहीं होगी।

नृसिंह गुरुजी की नि:स्वार्थ, सत्यवादी पत्रकारिता का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

जीवन के परिणत काल में उन्हें सहायता देने के लिए गुरुजी ने अपने दूसरे बेटे ताराकान्त को 'समाज' के पत्रकार के रूप में नियुक्ति दिलवायी थी। ताराकान्त बाबू ने दीर्घ दस साल के लिए काम समर्थ निष्ठा से निभाने के बावजूद अकारण ही उन्हें बरखास्त कर के किसी ओर को नियुक्त किया था। उससे नृसिंह गुरुजी क्षुब्द हुए नहीं, न कोई विरोध किया, वरन उस नवनियुक्त पत्रकार को सादर स्वीकार करलिया ।

उस समय बोड़ासम्बर पदापुर के एक व्योपरी की आय वहिर्भूत अनैतिक धन की जांच करने आयकर विभाग के अधिकारी अचानक आ पहुंचे । जांच समाप्त न होने तक उन व्यवसायी को अपने साथ रोके रखा । उन्हें कही भी जाने की अनुमति दी नहीं गयी । उसी तरह नजर कैद की स्थिति में रहते हुए उन व्योपरी की मृत्यु होगयी। व्योपारी के पुत्र ने अभियोग लाया कि आयकर विभाग के कार्यकर्त्ताओं के अमानवीय

और असदव्यवहार के कारण ही उनके पिता की मृत्यु हुई है ।

उस तरह की एक दु:खद घटना की सच्चायी की खोज में परिणत वय में भी गुरुजी सम्बलपुर से १ २ ५ कि.मि.स्थित पद्मपुर दौड़े आए। और हर तरह से जानकारी लेकर एक सत्यनिष्ठ समाचार के रूप में समाज अखबार के लिए भिजवाया । उनके द्वारा प्रेरित वह समाचार सम्पूर्ण सत्य पर ही आधारित था । वह समाचार तब धरित्री और प्रगतिवादी में भी छपा था ।

किन्तु , प्रकाशित सम्वाद के कारण सन्तुष्ट न होकर आयकर विभाग की ओर से विरोध को नकारते हुए दूसरे अखबारों ने भ्रम-स्वीकार करते हुए क्षमा याचना की नहीं, परन्तु , समाज के सम्पादक राधानाथ रथजी ने कुछेक प्रभावशाली कुचक्रियों की प्ररोचना से क्षमायाचना की थी । उस क्षमा याचना के कारण गुरुजी की साधुता तथा ख्याति अवश्य ही कलुषित हुई । जीवन भर सत्यपरक समाचार, तथ्य सम्मत खबर प्रकाशित करते आये गुरुजी मानसिक रुप में इस तरह क्षतावत हुए कि उसी से अनुतप्त और विषादग्रस्थ गुरुजी की परमायु घटती गयी और जिस समाज अखबार को वे प्राणों से भी बढ़कर स्नेहादर देते आए थे वह ही उनके असमय निधन का एक कारण बनगया।

नृसिंह गुरु बस एक प्रबुद्ध पत्रकार ही नहीं थे। एक प्रयोगशील खेतिहर भी थे। आपने अपनी थोड़ी-सी जमीन में उन नये नये तरीकों के प्रयोग से उदाहरण प्रस्तुत करने लगे जिससे प्रेरित हो दूसरे किसान, उसी के अनुसार इस्तेमाल करके अधिक लाभान्वित होने लगे। वह भी भारत में आत्मनिर्भरता के लिए उपादेय है ।

हीराकुद बाँध का निर्माण हो जाने के बाद सम्बलपुर के कुछ इलाकों के खेतिहर बाँध के पानी से सिंचाई के लिए कतराते रहे , अपने अंधविश्वासी धारणा के कारण । उनमें वह विश्वास घर कर गया था कि पानी से बिजली पैदा कर लेने के पश्चात जो पानी बचा रह जाएगा वह ऊर्जा रहित ही होगा और सिंचन के लिए उसे प्रयोग में लाने पर कोई फायदा ही नहीं होगा। सम्पूर्ण स्थिति से गुरुजी विस्मित हुए । किसी भी रूप में लोगों की धारणा भ्रमात्मक है , जताने की ठानी और वे खुद गुरुपालि में अपनी जमीन की सिंचाई हीराकुद केनाल जल से की । और फसल भी अच्छी हुई । इस प्रकार से प्रत्यक्ष प्रयोग करके गुरुजी ने प्रमाणित कर दिया कि हर हालत में पानी की ऊर्जा खतम नहीं होती । अत: हीराकुद से निसृत जल में भी वही शक्ति बनी हुई है , जो आम पानी में है

। उस भ्रान्त धारणा से मुक्त होकर प्रयोग करने के बाद खेतों में पैदावर की बढ़ोतरी के साथसाथ सरकारी इरादे को भी सफलता मिली , जिससे ओड़िशा सरकार की सम्पूर्ण कृषि विकास योजना (Integrated Agricultural Development Project) के अर्न्तगत गुरुजी सम्बलपुर में सम्वर्द्धित हुए थे ।

कर्म ही आराधना है , यह शिक्षा गुरुजी ने गांधीजी के आदर्शों की अनुप्रेरणा से पायी थी । गुरुजी एक अनासक्त कर्मयेगी थे। उनकी जीवन शैली वैचारिक स्तर पर भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित था । सभी ऋषि-मुनि सत्‌चिन्तक भारतीय समाज को उसी के आधार पर ही प्रेरित करते आये हैं । यह है वह अहिंसक शक्तिशाली विचार। राष्टपिता महात्मागांधी, योगी श्रीअरविन्द , डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ,महर्षि शिवानन्द , आचार्य तुलसी, संत विनोवा अदिआदि अवतारी पुरुष उसी के अनुयायी थे। अपनी सीमित दायरे में पूज्य गुरुजी के लिए भी, आचार,आचरण, वृत्ति, प्रवृत्ति में परम ध्येय के रूप में अंगीकृत था।

भारतीय संस्कृति ने मानव की आन्तरिक दिव्यता को स्वीकारा है । भारतीय सभ्यता आत्म-शक्ति को विकसित करके इसी दिव्यता की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण मानती है । भारत विश्व में एक महानतम आध्यात्मिक देश है । उसी बजह से पत्यक्ष्य परोक्ष्य रूप में प्रत्येक भारतीय का लक्ष्य एक है । वह है आत्म-स्वराज्य को प्राप्त करना , अर्थात् आन्तरिक और बाहरी प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त होकर मानव जीवन के चरमोत्कर्ष , आत्म सात्रात्कार को पाना । गांधीजी में अहिसंक आदर्श के रूप में वह विचार था, आस्था थी और उसी लक्ष्य को एकमात्र भारतीय लक्ष्य के रूप में तन मन धन से स्वीकार करते हुए भारतीयों ने भारत को पराधीनता से मुक्त कर के आजादी दिलायी है । अनुप्रेरक देवपुरुष थे गांधीजी तथा अकुंण्ठित मन में, स्वार्थ, लोभादि की भावनारहित हो कर कार्यान्वित करनेवाले थे नृसिंह गुरुजी के सरीखे महापुरुष, तब न हमें आजादी मिली। पर, इस देश को जिस रूपमें रजनैतिक आजादी मिली, वह तब तो पर्याप्त नहीं थी। अब दुरपयोग, कतिपय अनाचार के कारण एक तरह से दिशा भ्रमित है, यह यथार्थ की विडम्बना है ।

श्रीमदभगवत् गीता वह ग्रंथ है जिसमें भारतीय मूल संस्कृति की झलक है। गीता की आद्य तथा मूल वार्त्ता है अनासक्ति। आत्मा की अमरता इसका दूसरा संदेश है

और परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव होना अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार इसका तीसरा संदेश है । अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जिन्दा रहनेवाले गुरुजी, यहां तक कि घर परिवार के प्रति, अपने सुख, भोग के प्रति अनासक्त ही थे। देह नाशशील है, क्षयशील है पर अत्मा का नाश नहीं होता, तब न स्थूल शरीर में विद्यमान न होते हुए भी गुरुजी सब के अन्त:स्थल पर विराजित होकर हैं । वे ईश्वर साक्षात्कारी पुरुष थे तब न उनके लिए कोई अपना-परया नहीं था । यही समदर्शीता है ।

समाज में मनुष्य को अपनी परिस्थितियें के साथ समझौता करना पड़ा है । स्वयं के विकास के अनुसार मनुष्य को भिन्नभिन्न अवस्थाअें मे रह कर अपने धर्म का पालन करना है। गुरुजी के जीवन काल में स्थितियों के साथ समझौता करने के अनेक अवसर आये हैं । उसी में कर्त्तव्य निष्ठा को धर्म मानते हुए गुरुजी ने जो भी किया है उस में एक सत्य तो यह है कि वे सफलता के लिए न उल्लसित हुए न विफलता के कारण म्रीयमाण।विश्व भर में मनुष्य चार भागों में विभाजित हो कर है । संतपुरुष, दार्शनिक, ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण जो सही मायने में मार्गदर्शी होत है । क्षत्रिय वीर पुरुष जिनके लिए राष्ट्र या समाज को सुरक्षा की प्राप्ति होती है । व्यापार में रूचि रखनेवाले वणिक होते हैं , जिनके कारण आर्थिक विकास तथा अर्थव्यवस्था सन्तुलित होती है । एक और समूह, जो सेवारत रहते हैं वे श्रमिक हैं । शूद्र । यह विभाजन किसी स्वार्थ के आधार पर किया नहीं गया है। यह विभाजन मनुष्य में गुण और कर्म के अनुसार हुआ है । कोई जन्मत: न ब्राह्मण होता है , न शूद्र । अत: सभी आदरणीय हैं । कोई भी अवहेलना या घृणापात्र का नहीं है। यही समदर्शीता है । पूज्य गुरुजी के आचार-आचरणों में निहित अछूतों के प्रति वर्त्ताव, उनकी आर्थिक स्थिति, शैक्षिक विकास के लिए तत्परता एक विचार को प्रतिपादित करते हुए , उनकी ब्राह्मण के रूप में नैष्ठिकता, पूजा, पुराण पाठ, भूल से मांसभक्षण के कारण चान्द्रायण व्रत पालन उसी ध्येय के अनुरूप है । ऐसा है कि वह विभाजन एक प्रकार मनुष्य के गुणों और उनकी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार सामाजिक जीवन का सच्चा चित्र सामने रख देता है । स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म-रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। गुरुजी के जीवन क्रम में आयी इच्छित अनिच्छित स्थितियों पर विचार करें तो अवश्य ही अनुभव होगा कि गुरुजी सिद्धपुरुष थे उसी सिद्धि ने उनके सामाजिक जीवन में पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध को बनाए रखा था। मनुष्यों में सुख शान्ति की भावना समाज व्यवस्था में विकसित करने की

अभिलाषा से न केवल मनुष्य को अपने व्यक्तित्व को विकसित करके अपने चारों ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य फैलाना है । इस आदर्श विचार ने मानव जाति को एह ही सूत्र में पिरोयी है । अत: एक का सुख दूसरे पर निर्भर रहता है । यह आदर्श है और हम फिलहाल अनादर्शजन्य दुष्परिणाम ही भोगते जा रहे हैं ।

इच्छा-त्याग और आन्तरिक शान्ति भारतीय संस्कृति की विशेष देन है । ज्ञान केवल पाण्डित्य तक ही सीमित नहीं है । विचार करें तो हम जिसे पाण्डित्य मानते हैं वह पण्डिताई गुरुजी में नहीं थी । उनके लिए तो ज्ञान वह है जिसकी नींव नैतिकता और सदाचार पर अवलम्बित और सुदृढ़ था । नैतिकता ज्ञान की सच्ची कसौटी है । जीवन के गहनतम और सूक्ष्म सत्य का अनुभव करना ही ज्ञान है । श्रीमद्भागवत हमें ऐसे ही दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार कराती है ।

मैं एक और घटना का उल्लेख करना चाहूँगा । चाहे कोई भी काम हो , अपने जीवन के हर पड़ाव में, गुरुजी ने उसे दोषरहित पूरा करने की कोशिश ही की है । गुरुजी के सतीर्थ पत्रकार , आकाशवाणी , सम्बलपुर केन्द्र के सहकारी केन्द्र निदेशक **श्री शरत नारायण बेहरा** ने , अपने संस्मरण के अर्न्तगत (गुरुजी की स्मृति में प्रकाशित स्मारिका १९९५) बताया है - किस प्रकार मई-जून की दहकती दोपहरी में (दिन के १.३० बजे) बेहरा जी से उम्र में काफी बड़े गुरुजी , उनके घर डॉ. राधानाथ रथ के अभिभाषण की रिकार्डेड प्रतिलिपि के लिए अनुरोध कर ने आए थे । समाज के द्वारा आयोजित एक बैठक में प्रदत्त अभिभाषण की समाज और आकाशवाणी ने रिकार्डिंग की थी, पर दुर्भाग्य से समाजवाला रिकार्ड खाली था । समाज दफ्तर में नियुक्त रिकार्डिंग कार्यकर्त्ता को बचाने के लिए गुरुजी आकाशवाणी से एक कॉपी के लिए अनुरोध करने आये थे ताकि समाज में तत्काल प्रकाशन के लिए लेख बना कर भेजा जा सके । दूसरे दिन प्रभात संस्करण में उस संवोधन का प्रकाशन जरूरी था ।

श्री बेहराजी ने एक और घटना का ब्योरा प्रस्तुत किया है । जिससे नृसिंह गुरुजी की नम्र, उदार, सत्प्रवृत्ति की मानसिकता का प्रतिपादन होता है। गुरुजी ने नारायण पण्डा के देहावसान के बाद श्रद्धार्पण के लिए आयोजित शोक सभा की अध्यक्षता की थी। किन्तु, आकाशवाणी से आंचलिक समाचार बुलेटिन के प्रसारण में - **नृसिंह गुरु के निधन के कारण सम्बलपुर में अनुष्ठित शोकसभा की घोषणा गलती से होगयी।** सम्बलपुर आकाशवाणी के केन्द्र निदेशक ने तुरत जाकर गुरुजी से उस भूल

के लिए माफी मांगने के लिए कहा तो श्री बेहार गुरुजी से मिलने आए । गुरुजी मुसकराते हुए बाहर आए और अपनी स्वाभाविक व्यंग्यात्म शैली में कहने लगे , किस तरह आज दिन भर हमदर्दी जता कर जानकारी लेने आनेवाले हितैषी मित्रों को वे बताते रहे कि वे जीवित है । देखिये, एक सामान्य पत्रकार की भूमिका भी किस भांति महत्वपूर्ण होती है कि एक समाचार ने ही उथल पुथल मचा दिया!

महात्मास्वरूप नृसिंह गुरुजी ''आत्माराम'' थे, सदा अपने आप में निमज्जित निमग्न, तूफान तक में अस्थिर , अविचलित अपनी धूरी में अड़िग , चाहे वह कर्म कर्त्तव्य हो या भावना की अन्तहीन व्यापकता !

महर्षि शिवानन्द के वैचारिक सिद्धान्त के अनुसार राग-द्वेष का निर्मूलन अति आवश्यक है । उन्होंने जिस रूपमें अपने विचारों के विश्लेषण करते हुए एक लेख के अन्तर्गत कहा है , वह इस प्रकार है ।

प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए हैं । मनुष्य को इन दोनों के वश में नहीं होना चाहिए, क्यों कि ये दोनों ही उसके कल्याण मार्ग में विघ्न करनेवाले महान शत्रु हैं। गुरुजी राग-द्वेष रहित न होते तो, श्री शरतनारायण बेहरा जी के द्वारा वर्णित उपरोक्त घटना से वे किसी और रूप से प्रभावित होते और उसे उस सहजता से एक विनोदी घटना के रूप में लेकर परितुष्ट नहीं हो जाते !

महर्षि कहते हैं - आकर्षण, प्रेम और आसक्ति ही राग है । विकर्षण अरुचि , घृणा और नापसन्दगी द्वेष है । राग और द्वेष मन में उत्पन्न होनेवाली दो वृत्तियां हैं , जो अज्ञान और अविद्या से पैदा होती है । यह रहस्यमय संसार राग और द्वेष के द्वारा ही बरकरार रखा जाता है। राग द्वेष के ये दो प्रवाह माया के दो प्रबल शस्त्र हैं । जीवात्मा राग-द्वेष की इन मजबूत रस्सियों के द्वारा ही संसार से बँधाहुआ है ।

गुरुजी में पद, पदवी, परिधान आदि के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। जैसे-तैसे पढ़ाई पूरी करके किसी पद पर नियुक्त होकर आर्थिक स्थिति, रहन-सहन आदि को अनुकूलता प्रदान करने में उनकी विशेष कोई असुविधा नहीं थी । पत्रकार के रूप में भी वह सब करने कराने में उनके लिए कुछ वाधक नहीं होता।

राग-द्वेष और इच्छा इन तीन गुणों में गहरा सम्बन्ध है। राग-द्वेष स्वयं इच्छा हैं, पर वे परिच्छन्न, पवित्र, परिष्कृत नहीं होते। इच्छाएँ, संस्कार, राग-द्वेष, ये सभी माया के इन्द्रजाल हैं किन्तु इच्छा जब एक संस्कार बनती है तब वह एक गुण बन जाता है ।

माया के क्रिया कलापों को जानना समझना प्राय: असम्भव है । हर प्राणियों में विद्यमान अर्न्तयामी ही माया का वह रहस्यमय खेल क्या है जानता हैं । नृसिंह गुरुजी के समान जिन सत्पुरुषें मैं राग-द्वेष नहीं होते उनमें इच्छा ही नहीं होती । इच्छा होती है , पर वह इच्छा आवश्यकता के रूप में होती है । जैसे शरीर धारण के लिए खाद्य, तन ढँकने के लिए वस्त्र । वह आवश्यक है । गुरुजी तो सदा परितुष्ट एक महत् पुरुष थे । साधारण से साधारण खाद्य और खादी के समान्य वस्त्र। यह हो वह हो , राजसिक भोजन की व्यवस्था हो , खादी नहीं , किमती सुखदायी वस्त्र हों , आदि इच्छा हैं । गुरुजी खाने के लिए जिन्दा नहीं , जिन्दा रहने के लिए खाना उनके लिए आवश्यक था। वेसे वस्त्र। कहीं विश्राम करने , सो जाने ; नींद आए तो आवशयकता के रूपमें शयन की इच्छा होती है। वह समाज दफ्तर का बन्द कमरा हो , गोपबन्धु बाग में उत्कलमणि की प्रतिमा के लिए निर्मित चबूतरा हो या हवालात , कोई फर्क नहीं पड़ता । तो उन जैसों के लिए माया का क्या काम ? सुख की लालसा हो तब ही द्वेष का जागरण होता है । दु:ख हो तो , घृणा और द्वेष दानों होंगे ही । जो जितात्मा होते है उनके लिए सुख और दु:ख, शीत और उष्मा समान हैं । क्यों कि न वे सुख के कारण प्रमुदित होते है न दु:ख के कारण विमर्ष। गुरुजी में विभुकृपा से कोई प्रभाव या प्रतिक्रिया नहीं था ।

" जितात्मन: प्रशान्तस्य परमात्मा समाहित: ।
शीतेष्णसुखदु:खेषु तथार मानापमानो: "।

(श्रीगीता- ६-७)

शीत-उष्ण , सुख तथा दु:ख में तथा मान - अपमान में जिनकी अर्न्तवृत्ति शान्त रहती है , उनके समान स्वाधीन आतमाविशिष्ट पुरुषों के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् रूप में विद्यमान रहते हैं और ज्ञान में परमात्मा के अलावा कुछ और नहीं होते ।

तथा- " सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुस्वपि च पापेषु समपुद्धिर्विशिष्यते "।।

(श्रीगीता ६-९)

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ द्वेष्य तथा बन्धुओं में, धर्मात्मा और पापियों के प्रति भी वे महात्मा समभावापन्न होते हैं तथा वही कारण है कि वे अत्यन्त श्रेष्ठ माने जाते हैं ।

पूज्य गुरुजी की कर्मभूमि और कर्म पर विचार करें तो महात्मा गांधी और गुरुजी में भावात्मकता पूर्णरूप में समान थी । जो फर्क था वह था कर्मक्षेत्र की विशालता तथा सीमितता में । दोनों के लिए मुख्य लक्ष्य था भारत की आजादी । परम अभीप्सा थी दीन, दलित, शेषित असहाय वर्ग का उत्थान, शिक्षा, स्वास्थ्य ,आर्थिक स्थिति, निष्ठापर उद्यमशीलता, पारस्परिक मैत्री, परिपूरक सहयोग आदि भावनाओं में विकाश। भेदभाव रहित एक मित्रमय राष्ट्र। गांधीजी मार्गदर्शी चिन्तक थे। गुरुजी सरीखे आस्थावन्त निष्काम कर्मयोगी उनके अनुयायी थे। एक के लिए पवित्र विशाल भारतभूमि तो एक के लिए सम्बलपुर ही सही , दोनों में अध्यात्मिक आस्था, समाज संस्कार के लिए प्रयास, भारतीय संस्कृति परम्परा की मानवतावादी महानता का अनुशासन दोनों के लिए समान था । केवल दोनों की कदकाठी, लिबास , खानपान आदि वाह्य समानता नहीं आन्तरिकता में भी गुरुजी गांधीजी के प्रतिरूप थे ।

गुरुजी में तथाकथित पद प्रतिष्ठा आदि की लालसा होती तो, सेवा, आन्दोलन, मुक्ति संग्राम आदि ही नहीं , अपने को कहीं मंत्रीपद पर अधिष्ठित कराने के लिए गुरुजी की कोई असुविधा नहीं थी । केवल पत्रकार, यही पदाधिकार भी काफी होता वह सब हथियाने के लिए । किन्तु , वे उस कलुषित पथ पर चलना या मिथ्या, अनाचार आदि से वशीभूत होना चहते नहीं थे, ये सारे सुख, सम्पदा आसन हासिल करने के लिए।

भारत को राजनैतिक आजादी तो मिली पर वे दोनों में वह परितोष ही नहीं था क्यों कि वह आजादी सही मायने में उनके स्वप्न की स्वाधीनता नहीं थी । जिस आजादी के पश्चात देश का उत्थान हेगा , राष्ट्र का विकाश हो , मिली आजादी का स्वरूप वह नहीं था।

समय के काफी पक्के थे गुरुजी । अस्वस्थता न हो तो मानों समयानुवर्त्तिता के अभ्यासी थे गुरुजी, अत: आमंत्रणों में उल्लिखित समय के पूर्व ही वे उत्सव, सभा आदि के लिये पहुंच जाया करते थे । पत्रकारिता के कारण वह भी उनके लिए एक प्रकार से कर्त्तव्य बनता था । किसी कारणवश: पहुंच पाना सम्भव नहीं होने पर वे खेद प्रकट करके, असुविधा की सूचना देते हुए खबर कर देने से चुकते नहीं थे ।

गुरुजी का जीवन ही वैचित्र्यमय था। लगभग कहीं कोई स्थिरता नहीं थी, सिवाय इसके कि स्थितप्रज्ञ के समान वे स्वयं स्थिर थे, शान्त थे। हर स्थिति में दृढ़, अविचल, निर्विकल्प ! परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती होती गयी जीवन की , मानों एक

अनिश्चित धारा प्रवाह हो , जिस में वह जाना ही बेहतर है , प्रतिकूलता का सामना करके लड़ना तो एक बात है , प्रभु की इच्छा , नियति कि गति मान कर सभी नकारात्मक क्षण को स्वीकारनें के दम्भ को निश्चित ही विभुकृपा कहना होगा । दूसरों के लिए अपने आप को, अपनी हर कर्मण्यता को समर्पित्त कर देनेवाले गुरुजी के लिए न घर था न परिवार, न अपना स्वार्थ, आवश्यकता नाम की कोई चीज, बस एक देश था, जिसे उन्नत विकसित करने के लिए गांधीजी के आदर्श-पथ पर बेहिचक कदम बढ़ाते जाना, खान-पान, परिधान-परिधेय, आस्था-विश्वास, कर्तव्य-कर्म आदि आदि सभी महात्मा के अनुरूप। जागतिक विचार से गुरुजी की जिन्दगी में तो वाधक जटिलता भरी पड़ी थी। फिरभी, ध्येय के आगे वे सारे अर्थहीन थे । एक आम शिशु की भाँति जन्मित गुरुजी के जन्म और मरण के बीच जीवन नामक कालखण्ड सामान्य नहीं असाधारण था । अत: उस जीवन में उत्तरण के सोपनों का अतिक्रमण मननयोग्य है । विद्यार्थी जीवन की किसी अन्तिम परिपूर्णता तक की प्रतीक्षा किये वगैर स्वतंत्रता संग्राम की उत्ताल तरंगों , बहने बहजानें के लिए बह जाना , अपने भविष्य की परवाह किये बिना पढ़ाई छोड़ आना , सम्पूर्ण समर्पण की निष्ठापर भावना के प्रवाह में बहते हुए , कर्मण्ये वाधिका रस्तै मा फलेषु कदाचन पर गभीर आस्था से अंतिम लक्ष्य भारतीय आजादी तक पहुंचना कोई सामान्य बात नहीं है, वह भी गुरुजी के माफिक पुरुष के लिए। गांधीजी के आदर्श से अनुप्रेरित निराडम्वर सामान्य जीवन, आत्म बलिदानी भावना से अनुप्राणित राष्ट्र के लिए अपने आप को नौछावर कर देने की मानसिक दृढ़ता, सही मायने में सत्य-अहिंसा के व्रतनिष्ठा, अवहेलित दलित, मूकप्राय असहायों के लिए अपने आपको मुखपत्र बनाकर अन्याय, अनाचार के विरुद्ध आवाज उठाना आदि आदि किसी सामान्य जन के जीवन में अकल्पनीय निर्णय माना जाएगा, पर, गुरुजी के लिए वे सारे गौण थे। जीवन में हर पड़ाव पर, समाज में सामान्य जनों से मेल-मिलाप में, अपने विचार और मानवीय सहानुभूतिशील सोच के लिए , गांधीजी की प्रत्येक योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने लोग क्या कहते है या उनके लिए क्या सोचा करते हैं , अपनी खुद की परेशानी, पीड़ा को नजरअन्दाज करते हुए वे बस गांधीजी के दिखाये मार्ग पर ही चलते रहे जिन्दगी भर। अनेक बार जेल की सजा भुगती , हरिजन दलित समाज में घृणित लोगों की सेवा की और निरन्तर देश को पराधीनता से मुक्त और लोगों के अंधविश्वास , कुसंस्कार-मुक्त करने की कामना करते रहे पूज्य गुरुजी।

गुरुजी भारतीय आजादी के संग्राम में एक कर्मठ लड़ाकू योद्धा अवश्य थे, पर, उनमें नेता बनने की ललक नहीं थी । ध्येय वृहत्तम और असीमित होने के बावजूद गुरुजी के लिए क्षेत्र की सीमितता थी । उसी कारण से त्याग पूत समर्पित गुरुजी सम्बलपुर में सभी आजादी के लिए मर मिटनेवाले सैनिकों के परम मित्र थे , अग्रज अनुज भेदसे । वे घनश्याम पाणिग्राही को अग्रज मानते थे और दयानन्द शतपथी उन्हें सम्मानास्पद अग्रज मानते थे । वे लक्ष्मीनारायण जी के समान ओजस्वी वक्ता नहीं थे । पर एक मौन निष्ठापर कर्मी के रूप में उनके प्रति सब में भरमार स्नेह सम्मान था । उनमें कदापि एक मुखिया नेता बनने की अभिलाषा नहीं थी । वे सुखी और परितुष्ट थे सब के साथ शामिल होकर, सरल, सहज अनुशासन में कर्त्तव्य सम्पादन कर पाने में ।

क्यों कि नृसिंह गुरुजी के लिए विस्तृत ध्येयभूमि की विशालता और अपने विचारों में प्रवाहिता गांधीजी के आदर्शपूत चिन्तन की पवित्र जाह्नवी की अनाहद धारा थी और उसी के लिये कर्मभूमि की सीमितता भी थी, वह सम्बलपुर या समग्र उत्कल प्रदेश ही मानलें, तो गुरुजी के आकलन के लिए उस राजनैतिक स्थितिओं की जानकारी, मानता हूँ कि आवश्यक है । उसके पीछे गांधीजी के चिन्तन,कथन , आजादी के लिए सग्रांम आन्दोलन की योजना की अनुप्रेरणा अवश्य थी। सीमान्त गाँधी खान अब्दुल गफर खान, भारतीय आजादी के सैनिक तथा महात्मा गाँधीजी के परम अनुयायी थे । वैसे ही नृसिंह गुरुजी, जिनका कर्म क्षेत्र तो उत्कल भर में व्याप्त था, धेय भारतीय आजादी। एक बार फिर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का धरावतरण सम्भव नहीं है । सीमान्त गाँधी समान गुरुजी को उत्कल गाँधी के रूप में स्वीकारते हुए विदित करें तो वह उनकी आराधना के लिए अर्पित एक सही श्रद्धासुमन होगा। ।

गांधीजी के विचार में जो पारिवारिक जंजालों से मुक्त हों तथा उन पर कोई निर्भर करनेवाला न हो , वे ही व्यक्तिगत आन्दोलन में शामिल हो सकते हैं, यही स्थिर निश्चित हुआ था । उन जैसे व्यक्ति गणआन्दोलन में नहीं सत्याग्रही के रूप में सहयोगी हो सकते हैं । उनके लिए निर्द्धारित होंगें नारे लगाते हुए अहिंसक परिक्रमा, विदेशी द्रव्यों की वर्जना , विदेशी कपड़ों की तथा शराब अड्डों के आगे पिकेटिंग। उस समय गांधीजी ने सावरमती में आश्रम बंद करते हुए पत्नी कस्तूरवा के साथ १९३३ अगस्त १ तारीख से व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रारंभ किया था। उसी से उन्हें गिरफ्तार कर के यारवाड़ा कारागार में रखा गया । उनके पश्चात जवाहरलाल नेहरू आदि बडेबड़े नेताओं

ने भी कारावरण किया था। उत्कल प्रान्त में आयार्य हरिहर और कृपासिन्धु पुरी से , विपिन विहारी महान्ति याजपुर से तथा विनोद कानूनगो और सुरेन्द्र पट्टनायक कटक से गिरफ्तार हुए। सम्बलपुर से नृसिंह गुरु , वृन्दावन गुरु , भागीरथी पट्टनायक, जम्बोवती, प्रफुल्ल आदि हिरासत में ले लिये गये थे। नृसिंह गुरुजी तो एक एसे सत्याग्रही थे खादी के अलावा कुछ और पहनते नहीं थे । इस पहरावे के व्यतीत किसी और काम के लिए विदेशी वस्त्रों का इस्तेमाल करते नहीं थे । यहां तक कि मशीनों से प्रस्तुत किसी भी द्रव्य उनके लिए असिद्ध था। चीनी तक खाते नहीं थे , शक्करयुक्त क्षीर या कोई और मिष्टान्न तक खाते नहीं थे ।

व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में गिरफ्तार हुए नृसिंह गुरु , भागीरथी, वृन्दावन, महावीर सिंह, प्रफुल्ल पट्टनायक को पटना के कैम्प कारागार को ले लिया गया था। जम्बोवती वागलपुर सेंट्रल जेल को लायी गयी थीं। वहां जम्बोवती नारीनेत्री सरला देवी के साथ थीं , अत: उनके लिए जेल की सजा मानसिक स्तर पर सुखद थी ।

भारतीय तत्व आदर्शों के अनुसार परम लक्ष्य की प्राप्ति के छ: अमोघ सूत्र हैं। प्रथम सूत्र है सेवा । मानव जीवन सेवा के लिए है । आप जितनी शक्ति दूसरों की सेवा के लिए लगाएंगे , उसी परिमाण से अधिक दिव्य शक्ति आप पर बरसेगी । निष्काम सेवा मनुष्य जीवन में पवित्रता भर देती है । उसी से अहं अभिमान आदि के स्थान पर नम्रता,विशुद्ध प्रेम, सहानुभूति , सहनशीलता , दया आदि के महानतम मानवीय गुण भी पनपते हैं । कोई भी सेवा तुच्छ नहीं है । मानव की सेवा ही प्रभु सेवा कहलाती है । अत: प्रत्येक कार्य को प्रभु-पूजा मानें । निष्काम सेवा का अवसर तो उन्हें प्राप्त होता है , जो बड़भागी हों , जिन में जनमों का सुकृत हो । निष्काम सेवा के अन्तर्गत माता-पिता, बड़े-बूढ़ों, गुरुजनों , अतिथियों , महात्माओं की सेवा । क्षुधापीड़ितों को भोजन दान , रोगियों की शुश्रुषा , शोकसन्तप्तों का शोकापनोदन, निर्धनों को अन्न-वस्त्र दान , अशिक्षितों को विद्यादान , दलितों के हर दृष्टि से विकसित करने की निष्ठा आदि सतकर्म प्रमुख माने गये हैं । दलितों में अछूत अवहेलित वर्ग तो हरिजन थे। उस वर्ग को मान्यता प्रदान करने के लिए गांधीजी ने ही हरिजन नाम से विदित किया था।

नृसिंह गुरुजी के लिए भी मैं उस अवसर को उनके जन्मों के सुकृत मानता हूँ । उस समय , सन् १९३४ मई ५ तारीख को गांधीजी हरिजन गस्तक्रम में सम्बलपुर आये थे। उनकी उस यात्रा की सफलता के लिए जेल से सद्य-मुक्त हुए सम्बलपुर के

नेतागण जी-जान से तत्पर थे । फिरभी लक्ष्मीनारायण जी मुक्त हुए नहीं हुए थे , अत: वे शामिल नहीं हो पाये थे और सम्बलपुर उनके सांगठनिक नेतृत्व से वंचित हुआ था ।

उसी समय गांधीजी ने सम्बलपुर में हरिजन आवास का उद्‌घाटन किया था और गुरुजी आजीवन परिचालक के रूप में स्वीकृत हुए थे । गांधीजी के परामर्श से नृसिंहगुरु उसी दिन से हरिजन सेवा के लिए समर्पित हो गये । वे १९४२ के आन्दोलन में भी भाग न लेकर हरिजन सेवा में निष्ठापर भूमिका निभाते समय ही उन्हें हरिजन आवास ही से पुलिस ने हिरासत में ले ली थी ।

सन १९२८ में जब गांधीजी सम्बलपुर पधारे थे तब गुरुजी ने उनकी निरन्तर सेवा सत्कार किया था तथा उन्हें गांधीजी की व्यक्तिगत सन्निधि मिली थी । गांधीजी उनकी निष्ठापरता से अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुजी ने अंतिम समय तक उस चिन्तन से प्रभावित प्रेरित हो निभाते आए ।

१९३४ मई में अनुष्ठित कांग्रेस कमेटी के पटना अधिवेशन में उसी वर्ष नवम्बर में होनेवाले केन्द्र विधानसभा के चुनावों में भाग लेने का प्रस्ताव पारित हुआ। चुनाव प्रचार के लिए नीलकंठ दास जी सम्बलपुर आए थे । नृसिंह गुरु दासजी को गुरु के समान सम्मान देते आए थे । अत: गुरुजी भी प्रचार करने के लिए राजी हो गये । नृसिंह गुरुजी के अनुरोध से भागीरथी पट्टनायक जी ने भी पद्मपुर बोड़ासम्बर इलाके में प्रचार किया था । और चुनाव में कांग्रेस को आशातीत सफलता मिली थी ।

लक्ष्मीनारायण मिश्रजी भी जेल से मुक्त होकर संगठनात्मक कार्यक्रमों में विशेषकर हरिजनों की सेवा में आत्म-नियुक्त हुए थे ।

१९३७ में उत्कलीय मदर टेरेसा कहलेने वाली पर्वती गिरि तथा प्रभावती का सेवा संगठनात्मक कार्यमें योगदान , नारी जागरण और सचेतनता का उत्कृष्ट उदाहरण होगा। मालती चौधुरी जी बरगड़ यात्रा के समय समलाई पदर नाम के एक छोटे से गांव को भी आयी थीं। वहां बाहर साल की एक पार्वती नाम की लड़की उन से मिलने आयी और जिद करने लगी कि उसे कांग्रेस के सेवा-कार्यक्रमों में शामिल करलें । वह सेवा करना चाहती है। मालती देवी ने उसे लाख समझाया कि , उम्र कुछ बड़ी हो जाए , तब उसे शामिल करलेना ठीक होगा । पर वह मानी नहीं। उसके पिताजी धनंजय गिरि भी एक तरह से बेटी को छोड़ने के लिए वाध्य होगये । मालती देवी भी एक प्रकार वाध्य होकर लड़की को भागीरथी पट्टनायक और जम्बोवती के हाथों सौंप कर उसे रमादेवी के

बरी आश्रम में पहुंचा देने का अनुरोध किया । पट्टनायक दम्पति ने १९३७ नवंबर १७ तारीख को पार्वती को कांग्रेसी दीक्षा देकर, उसे एक खद्दर की साड़ी दी थी ।

इसके पूर्व एक और घटना घटी थी बरगड़ में जब मालती देवी एक सभा को संबोधित कर रही थी । वहां एक ब्राह्मण विधवा कन्या उनके साथ सदा रहने की जिद करने लगी । प्रभावती जब पंचवीं की छात्रा थी तब उन्हें अपनी विधवा होने की खबर मिली । बचपन ही में उनके पिता-माता ने उनकी शादी करवायी थी , जैसे उस समय की एक रीति थी । उन्हों ने अपने पति देव को देखा तक नहीं था । उसके पश्चात उन्हें ब्राह्मण विधवा के रूप में सभी रीति अनुशासनों का पालन करते हुए रहना पड़ा । मालती देवी ने उन्हें भी बरी आश्रम में पहुंचा देने का अनुरोध किया था । अत: १९३८ से दोनों पार्वती और प्रभावती को बरी आश्रम में सेवा कार्य के लिए प्रशिक्षण मिला था । उनमें आग्रह और आन्तरिकता के कारण वे दोंनो थोड़े ही दिनों में काफी कुछ जान गयीं।

१९३९ सितंबर प्रथम सप्ताह ही में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरु होगया। विश्व भर में आतंक की प्रतिक्रिया होने लगी । इंलैड ने लड़ाई में हिस्सा तो लिया, पर विड़म्वना कि उसमें भारत को भी शामिल कर लिया गया। उसके लिए इंलण्ड सरकार ने जातीय कांग्रेस के नेताओं से सलाह सशबिरा तक किया नहीं , प्रान्तीय सरकारों की सहमति लिए बिना इंलैड सरकार ने वह फैसला किया था। कांग्रेस का स्वाभिमान तथा जातीयता पर वह एक शक्तिशाली प्रहार था । गांधीजी ने उसका शक्त विरोध करते हुए दो शर्तें रखी। पहली शर्त्त थी कि मध्यवर्ती कालीन व्यवस्था के रूप में हठात एक लोकप्रिय सरकार की प्रतिष्ठा हो और दूसरी शर्त के रूप में युद्ध के तुरत बाद नूतन संविधान प्रणयन तथा पूर्ण स्वाधीनता की मांग थी । तब गांधीजी उसके लिए प्रतिश्रुति भर की ही मांग की थी । पर, अंग्रेज सरकार उसके लिए कतई तैयार नहीं थी। अत: गांधीजी ने सरकार से सभी कांग्रेसी सदस्यों को इस्तीफा देने को कहा। उसी के अनुसार १९३९ नवंबर ४ को ओड़िशा के प्रधान मंत्री विश्वनाथ दास जी ने इस्तीफा दे दी। छोटे लाट जॉन अष्टिन ह्वाक् ने १९३५ के भारतीय कानून दफा ९३ के अनुसार स्वयं ओड़िशा का शासन भार सँभाला था । उसके बाद ओड़िशा में कांग्रेस एक विशाल विद्रोह के लिए तैयार होने लगा।

उस समय बोधराम दुवे जी सम्बलपुर लौट कर अन्य नेताओं से मिल कर पश्चिम ओड़िशा में जन जागरण के लिए उद्यम करने लगे। उस समय नारी जागरण के

लिए नारी कर्मियों की आवश्यकता अनुभव करते हुए उन्होंने प्रभावती तथा पार्वती गिरि को बरी आश्रम से लिवा लाया था ।

१९४०अक्टूबर १७ तारीख से फिर व्यक्तिगत आन्दोलन की शुरुआत हुई । सरकार को आन्दोलन में भाग लेने की सूचनास्वरूप नोटिस देकर तथा युद्ध विरोधी नारे लगा कर कारावरण करने के लिए सत्याग्रहियों का आह्वान किया था। उसके लिए पहले गांधीजी ने संत विनोवा जी को चुना था । उस समय विनोवा जी भारत में जानेमाने नहीं थे मात्र गांधीजी उनकी धर्मप्राणता, आन्तरिकता तथा पाण्डित्य और ऋतदर्शिता के लिए बेहद चांहते थे । विनोवा जी ने सरकार को नोटिस देकर चार दिनों के प्रचार के बाद गिरफ्तार हुए थे। उनके पश्चात नेहरू जी आये, पर, प्रचार करने के पूर्व ही उन्हें हिरासत में ले लिया गया था। तत्पश्चात गांधीजी के द्वारा चुनेहुए सैंकड़ों नेताओं ने कारावरण किया था ।

ओड़िशा प्रान्त में व्यक्तिगत आन्दोलन का प्रारंभ हुआ था दिसम्बर १, १९४० से। आद्य सत्याग्रही थे हरेकृष्ण महताब्। सम्बलपुर के प्रथम सत्याग्रही बोधराम दुवे जी अपने नन्दपड़ा निवास से दिसम्बर दो तारीख को वृद्धा माताजी से आशीर्वाद लेकर निकलते ही गिरफ्तारहुए । बाहर एस.डी.ओ उन्हींके इन्तजार में थे। ३ तारीख को बरगड़ में सत्याग्रह का प्रारंभ हुआ । उस समय अनगिनत नारे लगानेवाले सत्याग्रही बन्दी बनाये गये थे । धीरे धीरे सत्याग्रहियों की संख्या भी तेजी से बढ़ने लगी। पहले पहले तो गांधीजी के इस आन्दोलन के लिए सरकार में विद्रूप था। पर, जब उस सत्याग्रही आन्दोलन ने तीव्र रूप लिया तब आर्न्तजातिक कटु आलोचन को टालने के लिए सरकारी ओर से वाध्यता में कुछेक उल्लेखनीय कदम उठाये गये। फलस्वरूप शासन परिषद में भारतीय सदस्यों की संख्या में अभिवृद्धि हुई और कानून उल्लंघन के जुर्म में बन्दी बनाए गये राजनेताओं को मुक्त कर दियागया। उसीसे प्रभावित हो कर कुछेक नेता आन्दोलन को कुछ समय के लिए स्थगित रखना चाहा । किन्तु, १९४१ दिसंवर ७ तारीख को पर्लहरवर पर अचानक हमला करके नाटकीय ढंग से जापान युद्ध में शामिल होकर इण्डोचीन, इण्डोनेसिया, मालय आदि को अख्तियार करलेने के कारण भारत पर भी जापानी आक्रमण की आशंका घनीभूत होने लगी। उस स्थिति में गांधीजी सत्याग्रह आन्दोलन को १९४१ दिसंवर ३१ के दिन रोक लिया था ।

उस बीच ओड़िशा प्रदेश कांग्रेस कमेटी में नीलकण्ठ दास के दल ने अनुभव

किया कि महताब् गुट के साथ उनके समझौते की कोई आशा नहीं है । अत: वे कांग्रेस से अलग होकर स्वराज दल के नाम से एक नूतन दल की प्रतिष्ठा की । नवगठित दल के सभापति हुए गोदावरीश मिश्र तथा सचिव बने दिवाकर पट्टनायक । नीलकंठ उस समय केन्द्र आसेम्ब्ली के सदस्य थे । वे ओड़िशा के विभिन्न इलाकों में घूम कर सदस्य-संग्रह करने लगे । गोदावरीश मिश्र जी बरगड़ आकर फकीर बेहरा तथा विशि बिभार को सदस्य बनने के लिए प्रलोभित करते थे, उसी का उल्लेख भरतचन्द्र नायक की आत्मजीवनी (मो स्मृति कथा-पृ ३ ० २) में है । उसमें उनकी विफलता के बावजूद इस इलाके के अनेक कांग्रेस कर्मी स्वराज दल में शामिल भी हुए थे। स्वराज दल उस समय सरकारी युद्ध नीति का समर्थन करते हुए कटू आलोचना भी करता था ।

जब इंलैण्ड के मित्रशक्ति राष्ट्रों ने भारतीय नेताओं की मांग की यथार्थता को स्वीकारते हुए इलैंड पर दवाब डालने की कोशिश की तब उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए इंलैण्ड के प्रधान मंत्री उइनष्टन चर्चिल ने अपने मंत्री मण्डल के वरिष्ठ सदस्य सर ष्टाफोर्ड क्रीप्स को कुछेक गुरुत्वपूर्ण हिदायत तथा प्रस्ताव सहित भारतीय नेताओं के साथ विचार विमर्ष के लिए भेजा था । वही मिशन क्रीप्स मिशन के नाम से विदित है । क्रीप्स सन१ ९ ४ २ मार्च २ २ को भारत पहुंच कर दिल्ली में गवर्णर जेनरल से सलह मशबिरा करने लगे । उस समय श्री अरविन्द पॅण्डिचेरी आश्रम में एकान्त वास में होते हुए भी भारत को एक खास प्रतिनिधि के द्वारा क्रिप्स के प्रस्तावों को मान लेने के लिए भारतीय नेताओं से अनुरोध किया था । परन्तु , कांग्रेस के नेता गण विचार आलोचना करके उसे स्वीकारा नहीं । गांधीजीने भी सोचा और अनुभव किया कि क्रिप्स मिशन चर्च्चिल की जालसाजी, षड्यंत्र, धोखा है ।

भारतीय आजादी की लड़ाई के इतिहास में 'भारत छोड़ो ' आन्दोलन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्रिप्स मिशन की असफलता से गंधीजी ने दृढ़ निर्णय लिया कि अब भारतीय पूर्ण स्वाधीनता के लिए अंग्रेज सरकार पर जोरदार दवाब डालना निहायत जरुरी है। वही सर्वोत्तम समय था। १ ९ ४ २ अगस्त से सबसे प्रभावशाली और फलदायी उस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ । यह अन्दोलन भारत छोड़ो या अगस्त विप्लव के नाम से अभिहित है । गांधीजी के द्वारा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में १ ९ ४ २ जुलाई १ ४ तारीख को पारित वह प्रस्ताव तथा ८ अगस्त को मुम्बई के कांग्रेस के साधारण अधिवेशन में सर्वसम्मत हो उत्साह उद्दीपना से स्वीकृत हुआ था।

भारत के लिए यह आन्दोलन वैप्लविक अग्निकुण्ड के समान था। उसके लिए मानों सम्बलपुर पहले से तैयार था। सम्बलपुर के अग्रणी नेता लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा प्रह्लाद राय लाठजी, दोनों ऐतिहासिक मुम्बई अधिवेशन में शामिल हुए थे । गांधीजी ने कुछ ही दिनों की तैयारी के पश्चात आन्दोलन की शुरुआत करने की योजना बनायी थी । परन्तु , उसके काफी पहले सरकार ने कुछेक चुनेहुए नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, साथ ही कांग्रेस संस्था भी व्यासिद्ध घोषित हुई । कांग्रेस इससे नेतृत्वविहीन हो जाएगा, यही सरकार की आशा थी। जिससे अन्दोलन भी थम ही जाएगा। लक्ष्मीनारायण मिश्रजी के मुम्बई से लौटते समय पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने के ताक में झारसुगुड़ा में थी। बोधराम दुबे, प्रह्लादराय लाठ आदि अनेक नेताओं को उनके आवासों से ही गिरफ्तार कर लिया गय था। स्वयं सम्बलपुर के डिप्टी कमिशनर हरिजन छात्रावास से विशिष्ट कांग्रेस नेता तथा छात्रावास के परिचालक नृसिंह गुरुजी को पुलिस हिरासत में ले लिया था, जब कि गुरुजी १ ९ ४ २ से व्यक्तिगत आन्दोलन से परे हरिजनों की सेवा से जुड़े हुए थे। इस बार उन्हें भारत सुरक्षा कानून के आधार पर गिरफ्तार किया गया था। उनके विरुद्ध कुछ भी कानूनी जुर्म प्रमाणित हो नहीं पाया। फिरभी, उन्हें सम्बलपुर जेल में दो साल से अधिक समय तक बंदी बनाए रखा गया था । भारत छोड़ो आन्दोलन के पहले ही पंचपड़ा के वरिष्ठ कांग्रेस नेता चिन्तामणि पूजारीजी का सन. १ ९ ४ २ जून ३ तारीख को देहान्त हुआ। वे लवण सत्याग्रह के समय से अस्वस्थ रहते थे, फिरभी, दुर्बल स्वस्थ्य के बावजूद जहां तक सम्भव हो पाता अन्दोलनों में भाग लिया करते थे । विद्रोह के जटिल स्थिति में उनका देहान्त होने के कारण सम्बलपुर के कांग्रेसी नेतागण मानसिक स्तर पर काफी आहत हुए थे। सरकार की अकारण गिरफ्तार कर लेने की प्रवृत्ति के कारण आन्दोलन गांव देहातों में भी फैलने लगा तथा कहीं कहीं तो भयानक और हिंसक भी होने लगा । संग्रामी लुकेछिपे हिंसक कार्य करने लगे, सरकारी दफ्तर इमारतों को जला डाले, सड़कों से पूलों को तोड़ कर सरकारी दलिलों को जला कर, आसबावों को तोड़फोड़ के कारण काफी क्षति हुई थी। कहा जाता है, विजय पाणिजी के नेतत्व में कांग्रेसी कर्मियों ने झारसुगुड़ा हवाई अड्डे तक को जला डालने की कोशिश की थी। उस समय कई जगहों पर हिंसक घटनाएँ घटित होने लगी। वे घटनाएँ अब भी जनस्मृति में हैं। सरकार ने भी पूरे दम खम से हिंसक कार्यवायी करते हुए सैंकड़ो को गिरफ्तार करने में चुकती नहीं थी। इस क्षेत्र के एक प्रमुख नेता भागीरथी जी प्रान्तीय नेताओं से सलाह

मशविरा करने सोनपुर - बौद्ध होते हुए , छिपते-छिपते कटक गये थे। वापसी के समय अपने ही एक की गलती के कारण पकड़े गये और २५ अगस्त को उन्हें बंदी बनाया गया था। उसी तरह झारसुगुड़ा के भानुशंकर योशीजी कई दिनों तक गुमशुदा रहने के बाद गिरफ्तार हुए थे । इस क्षेत्र के अनेक अनेक कांग्रेसी नेता पकड़े गये थे कि , उन सबका उल्लेख करना नामुमकीन है । दृष्टान्तात: एक छोटे-से गांव रेमण्डा से मङ्गलू पधान, येगेन्द्र दोरा, महेश्वर नायक, लक्ष्मणलाल जयस्वाल, रामचन्द्र नन्द, भीमसेन मेहेर, बाबाजी मेहेर , भीमसेन साहू, अनिरुद्ध साहू आदिआदि । इस तरह से अनेक गांवों के उदाहरण दिये जा सकते हैं । बरगड़ के समीप एक छोटेसे गांव पाणिमोरा ने सब का ध्यानाकर्षित किया था। १९३९ में इसी गांव के कुछेक उत्साही युवा बरगड़ बालिटिकरा के फकीर बेहेरा के घर पर कांग्रेस बैठक में शामिल होकर लौटते समय नवीन प्रेरणा से प्रचोदित हो गांव में एक ग्राम्य कांग्रेस कमेटी की स्थापना की थी । उसी दिन से कांग्रेसी नीति अपना कर परिचालित होने को वाध्य हुए और सम्पूर्ण गांव नशा मुक्त होगया। गांव भर में सभी परिवार एक परिवार समान चलने लगे। छूआछूत का कोई भेद ही नहीं रहा। सबने अपने हाथों से सूत कातते हुए खादी पहनने की कसम खायी। लक्ष्मीनारायण मिश्र, भागीरथी पट्टनायक, नृसिंह गुरु, दयानन्द शतपथी , प्रह्लाद लाठजी आदि बारंबार पाणिमोरा आते-जाते थे । प्रान्तीय स्तर के डॉ हरेकृष्ण महताब, नवकृष्ण चौधुरी, विश्वनाथ दास , आचार्य हरिहर , मालती चौधुरी सरीखे नेतागण भी पाणिमोरा आये थे । व्यक्तिगत आन्दोलन के समय पाणिमोरा से सत्याग्रह के लिए नौ सदस्य चुने गये थे। वे सब के सब गिरफ्तार हुए थे । १९४२ के भारतछोड़ो आन्दोलन में शामिल होने के लिए गांववालों ने ४२ लोगों को चुना था। उन में से ३२ पकड़े गये थे। १९४७ अगस्त १५ को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर पाणिमोरा श्रीजगन्नाथ मंदिर में हरिजन प्रवेश कराके देव पूजन की अनुमति दी गयी थी । उसी के फलस्वरूप गांव के गौन्तिया ने गांव छोड़ कर सदा के लिए समीपस्थ जनपालि में निवास करते हुए अन्तिम जीवन बिताया था । पाणिमोरा गांव आज भी एक आदर्श गांधीवादी गांव कहलाता है । नित्य देशप्रेमी भजन संकीर्तन , सूत्रयज्ञ , देव आराधनावत् गांधी पूजन आदि आज भी प्रचलित है । शायद उस समान कोई और गांव भारत भर में नहीं है ।

पाणिमोरा के पड़ोशी गांव समलाई पदर की बालिका-संग्रामी पार्वती गिरि बरी

आश्रम से लौट कर भारत छोड़ो आन्दोलन के समय गांव में थीं। तब वे मात्र १६ साल की थीं। आन्दोलन में शामिल होने के जुर्म में उन्हें तथा उनकी सहकर्मियों को तथा आत्मीयों को भी पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया । उन्हीं लोगों में रामचन्द्र पुरी , उज्ज्वल पुरी, द्वितीया गिरि, मङ्गला गिरि, तुलसी गिरि, द्वादशी गिरि आदि थीं। किन्तु , उस षोड़शी कन्या को स्पर्श करने का साहस पुलिस ने नहीं जुटा पाया। उसके दूसरे दिन Sri पार्वती तिरंगा फहराते हुए बरगड़ पहुंची और एस.डी.ओ की अदालत में कुर्सी अक्तियार कर के बैठगयीं । एस्.डी.ओ ने उन्हें बाहर लाकर गाड़ी से समलाई पदर में छोड़ आये थे। पर दूसरे दिन पार्वती ने नारे लगाते हुए पहुंची तो मजबूरन उन्हें सम्बलपुर जेल को रिमाण्ड कर दिया गया । पहले से सम्बलपुर जेल में प्रभावतीजी गिरफ्तार हो कर थी । अत: उन दोनों को फिर मिलने का और एक साथ रहने का अवसर मिला । एक साल के बाद प्रभावती जी कटक जेल को स्थानान्तरित हुई थीं तथा पावती जी को मुक्त कर दिया गया था । स्वाधीनता के पश्चात दोनों नेत्री आजीवन सेवाब्रतधारिणी हुईं । पार्वती गिरि ने पाइकमाल में नृसिंहनाथ मंदिर के निकट कस्तूरबा मातृ निकेतन की प्रतिष्ठा की। प्रभावती जी सम्बलपुर के समीप बरगांव में मातृमंगल केन्द्र तथा रुक्मणी लाठ बाल निकेतन की स्थापना की । आन्दोलन के समय संग्रामी तथा शान्ति के समय माता की भूमिका में निष्ठापर कर्म के कारण आज इतिहास के पन्नों में वन्दनीया स्मरणीया हो कर हैं ।

स्वतंत्रता के अलग अलग पर्यायों में सम्बलपुर के छात्रों की उल्लेखनीय भूमिका थी। १९२१ में असहयोग आन्दोलन के समय जिल्ला स्कूल की परिचालना वस्तुत: विद्यार्थियों के हाथों में थी । परन्तु, १९४२ में बरगड़ जर्ज हाइस्कूल के छात्रों की अग्रणी भूमिका थी । इसी स्कूल के छात्र नेता गणनाथ प्रधान के सांगठनिक नेतृत्व शक्तिशाली था । उनके लिए सभी छात्रों का अकुण्ठ सहयोग समर्थन था । धीरधीरे छात्र आन्दोलन उग्र होने लगा है , सूचना प्राप्त हो कर बरगड़ के एस.डी.ओ सूर्यज्योति मजुमदार एक दिन अचानक हाइस्कूल परिदर्शन के लिए आकर गणनाथ से मिलने की कोशिश की थी । गणनाथ साहब से मिलने के लिए एडवर्ड मेमोरीयल होस्टेल से आए। उस दिन विद्यालय के प्रांगण में दोनों की नाटकीय भेंट छात्र तथा जनता के लिए उपभोग्य हुई थी। गणनाथ उत्क्षिप्त उत्तेजित थे, किन्तु , एस.डी.ओ धीर और गंभीर थे। वे उन्हें विद्यार्थि के लिए पवित्र कर्तव्य क्या होता है , समझा रहे थे । परन्तु, गणनाथ उन्हें अंग्रेज

गुलामी से इस्तिफा देकर स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने का अनुरोध करते जा रहे थे। गणनाथ की उस दिन की भूमिका ने उन्हें बरगड़ के इलाके भर में लोकप्रिय कर दिय। वर्षों के पश्चात जब वे बरगड़ लोकसभा चुनाव के लिए उम्मेदवार हुए तब वह घटना और लोकप्रियता उनकी सफलता में सहायक सिद्ध हुई । वह भी कि एस.डी.ओ सूर्यज्योति मजुमदार गणनाथ के खिलाप कोई कानूनी कार्यवायी न करके अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया था। उन्हें गिरफ्तार करते तो शायद घटना कोई अलग मोड़ लेती। सूर्यज्योति छात्रप्रिय थे । बरगड़ में गीता हेस्टल तथा जर्ज हाइस्कूल के सामने गीता भवन टाउन, हॉल निर्माण का सारा श्रेय उन्हीं को जाता है। ये दोनों भवन उनकी धर्मपत्नी गीता मजुमदार के नामानुसार नामित हुए हैं । १९४३ से एक एक करके राजबंदी रिहा होने लगे। मुक्त होकर वे सांगठनिक कामों में लगे। भागीरथी पट्टनायक १९४३ जुलाई १ को मुक्त हुए तो उन्हें १५.७.१९४३ को पत्नी जम्बोवती देवी के बिहार में देहान्त की खबर मिली। वे जेल से मुक्त होकर दुस्थ कर्मियों के सुख-दु:ख की जानकारी लेकर विहार गये।

१९४४ फरवरी में माता कस्तूरबा का देहान्त जेल में हुआ था । वे अस्वस्थ थीं और समीचीन चिकित्सा के अभाव में उनकी मृत्यु हुई , ऐसा अभियोग हुआ। समाचार मिलते ही सम्बलपुर में शोकसभाएँ अनुष्ठित होने लगी तथा बारह दिनों तक शोककाल मनाया गया था। १९४४ से एक एक करके सम्बलपुर के बड़ेबड़े नेता मुक्त होने लगे। पहले नृसिंहगुरु और दुर्गाप्रसाद गुरु मुक्त हुए । किन्तु , दुर्गा गुरु के लिए शर्त रही कि वे झारसुगुड़ा इलाके में फिर प्रवेश करेंगे नहीं। परन्तु, दुर्गाजी उस प्रतिबन्ध को मानने के लिए तैयार नहीं थे । अत: वे फिरसे गिरफ्तार हुए और तबीयत बिगड़ने लगी तो उन्हें मुक्त कर दिया गया और वे इलाज के लिए कोलकाता गये पर डॉ.बी.सी.राय जी की निष्ठापर कोशिश के बावजूद उन्हें बचाया नहीं जा सका । तब उनकी पत्नी शैलसुता वर्धा में थीं। गांधीजी ने सुव्यवस्थित करके उन्हें सम्बलपुर भिजवाया था। गांधीजी १९४४ मई ६ तारीख से कारामुक्त हो चुके थे । किन्तु, कार्यकारिणी समिति के कुछेक सदस्य और प्रमुख नेतागण १९४५ तक जेल ही में रहे थे ।

१९४४ में सम्बलपुर के कुछेक नेता और कर्मी कांग्रेसी नीति तज कर कम्युनिष्ट पार्टी में शामिल हुए थे। दयानन्द शतपथीजी के नेतृत्व में फकीर बेहरा , मंगलू पधान, मायाधर पुरोहित , नटवर बनछोर, अग्नि मल्लिक , लक्ष्मण पूजारी आदि जो कुछ

दिन पहले कांग्रेस के कट्टर कर्मी थे वे आकर लाल झंडे के नीचे खड़े होगये । बाद में प्रसन्न पण्डाजी भी उनसे आ मिले । १९४७ में आजादी के बाद भागीरथी पट्टनायक भी कांग्रेस से अलग होकर कम्युनिष्ट हुए।

१९४५ विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीय आजादी निश्चित-सी लगने लगी। तब भी इंलैण्ड के प्रधान मंत्री चर्च्चिल मुसलीम लीग के नेता जिन्ना को प्रभावित प्रलोभित करते हुए स्थिति को उलझाने की कोशिश करते रहे थे । १९४५ इंलैण्ड के आम चुनाव में उनकी पार्टी हार गयी और लेवर पार्टी के क्लिमेण्ट ऑटली प्रधान मंत्री हुए । अटलि साहब भारत को आजादी दिलाने के लिए कटिबद्ध थे। उसी के कारण संख्यालघु सम्प्रदाय को भारत में किसी भी प्रकार प्रतिकूल स्थिति पैदा करने न देने की घोषणा की। उसके लिए उपाय निरूपण हेतु भारतीय नेताओं से सलाह मशबिरा करने अपने मंत्रीमण्डल के तीन सदस्यों को १९४६ मार्च में भारत भेजा था । इसे कैबिनट मिशन कहते हैं ।

१९४६ मार्च में प्रान्तीय असेंब्लियों के पुर्नगठन के लिए चुनाव हुए। ओड़िशा आसेंब्लि के ६० में से चार सदस्यों को छोटेलाट ने चुना था। बाकी ५६ जगहों से कांग्रेस ४७ , मुसलिम लीग ४ तथा कम्युनिष्ट १ , विजयी घोषित थे। बाकी चार थे स्वाधीन उम्मेदवार। सम्बलपुर से पांच चुने गये थे - वे हैं बोधराम दुवे, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लाल रणजित सिंह , मोहन सिंह और विशि विभार । १९४६ अप्रेल २३ तारीख के दिन हरेकृष्ण महताब ने ओड़िशा के प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली थी । उनके मंत्री मण्डल में नवकृष्ण चौधुरी, पण्डित लिंगराज मिश्र, नित्यानन्द कानूनगो, राधाकृष्ण बिश्वास राय मंत्री बने । सम्बलपुर के एक को भी मंत्री के रूप में चुना नहीं गया था ।

उस बीच कैबिनट मिशन की रिपोर्ट के अनुसार केन्द्र में मध्यवर्त्ती कालीन सरकार गठन के लिए कोशिश होने लगी थी । उस समय गवर्णर दोमुँही नीति अपनाते हुए एक ओर कांग्रेसी नेताओं के साथ चर्च्चा करते थे। दूसरी ओर जिन्ना को पृष्ठपोषकता देते हुए उत्साहित भी करते जा रहे थे । उसी के कारण जिन्ना कांग्रेस के साथ सहयोग को अस्वीकार करते हुए १९४६ अगस्त १६ के दिन मुसलमानों को प्रत्यक्ष कार्य (Direct Action)लिये चुनौती दी । परिणामस्वरूप कोलकाता में हिन्दू मुसलिम दंगे में हजारों की संख्या में हिन्दू मुसलमान मारे गये । हत्या ताण्डव खौफनाक ध्वंस लीला के बावजूद बंगाल के प्रधान मंत्री सुरावर्दी खान ने दंगे पर काबू पाने के लिए पुलिस को कोई आदेश तक दिया नहीं था । उन्होंने वही सावित कर दिखाना चाहा कि मुसलमानों की मांग

पूरी न हो तो परिणाम किस हद तक भयानक होगा । उस समय पूर्व बंगाल के नूआखालि में धर्मान्ध मुसलिम नेताओं ने जिस वर्बरता का प्रदर्शन करवाया उससे चिन्ताशील समुदाय स्तब्ध चकित दंग ही रह गया था और गांधीजी अपने प्राणों की सुरक्षा की परवाह किये बिना नूआखालि पहुंचे और हिंसक क्रिया ने भिन्न मोड़ लिया था । कांग्रेसी नेतागण दृढ़ता से मुकाबला किया था । इन सबके बावजूद जवाहरलाल नेहरू ने केन्द्र मंत्रीमण्डल बना कर उस में मुसलिम लीग के ५ सदस्यों को शामिल किया था। लिग ने मंत्रीमण्डल में अचल , स्थितावस्था लाने की ही कोशिश करती रही और वह दुष्कर्म दिनोंदिन बढ़ता गया।

तब १९४७ मार्च में भारतीय वाइसराय के रूप में लॉर्ड माउण्ट बेटन आए मुसलिम लीग किसी भी स्थिति में कांग्रेस से हाथ मिलाएगी नहीं न सहायता देगी , यही माउण्टबेटन ने महसूसा। अत: स्वतंत्र राष्ट्र के रूपमें पाकिस्तान बनाने के सिवाय कोई और उपाय ही नहीं था । उन्होंने एक संकुचित पाकिस्तान का प्रारूप बना कर कांग्रेस तथा मुसलिम लीग के नेताओं की रजामन्दी ले ली । उसके बाद उन्होंने उसी योजना को इंलैण्ड सरकार के पास पार्ल्यमिंटारी स्वीकृति के लिए भेजी थी । उसी के तहत भारतीय स्वतंत्रता कानून बन कर पार्ल्यमिंट में अनुमोदित हो स्वीकृत हुआ । फलस्वरूप १९४७ अगस्त १५ को भारत तथा पाकिस्तान को दो स्वतंत्र सार्वभौम राष्ट्र की मान्यता मिली और एक नया युग का प्रारंभ हुआ ।

आजादी की लड़ाई में निष्ठापर सिपाही नृसिंह गुरु अपने नि:स्वार्थ जनसेवा, दलित हरिजनों के सर्वांगीन विकाश हेतु समर्पित वचन-कर्म, आचार-विचार , ध्येय-आदर्श , निष्काम गांधीवादी आदर्शों के अनुयायी, त्यागी , तपस्वी के रूप में जनमानस में सदा के लिए अमर रहेंगे । उनके सम्मान में १९९५ की स्मारिका में एक लेख है सोहेला - पानीमोरा के स्वतंत्रता सैनिक चमरू परिड़ा जी का । उन्होंने गुरुजी की तुलना मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के कुलगुरु महर्षि वशिष्ट से की है । सम्बलपुर में स्वतंत्रता संग्राम के लिए कोई भी निर्णय गुरुजी की सम्मति सुझाव के बिना लिया नहीं जाता था । ग्रामीण सामान्य स्वयंसेवक जो भी आते वे तत्काल गुरुजी से भेंट और वाक्‌विनिमय होते ही प्रभावित हो जाते थे उनके आत्मीय अंतरंग वर्त्ताव के कारण ।

चमरू परिड़ाजी फिर कहते हैं - लक्ष्मीनारयण मिश्र , नृसिंह गुरु और दयानन्द शतपथी जी सम्बलपुर में स्वतंत्रता संग्राम के तीन विशाल वटवृक्षों के समान हैं । वे दूसरे

सैनिकों के लिए छायाप्रद विश्राम क्षेत्र हैं , कोई समस्या आड़े आए तो सही सुझाव से हल के लिए , ताकि वे फिर आगे बढ़ सकें।

दो उल्लेखनीय महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं जिससे प्रतिपादित होता है कि गुरुजी को जातीय स्तर पर नेतागण जानते थे और उनके मन में उनके लिए आदर सम्मान था ।

पहली घटना तब की है , जब भारत के प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी पश्चिम ओड़िशा को चुनाव प्रचार के लिए आयी थीं। उन्हें झारसुगुड़ा हवाई अड्डे में उतरना था। सम्बलपुर और आस-पास के लगभग सभी पत्रकार फोटोग्राफर और कांग्रेसी नेतागण एकत्रित हुए थे । हवाई अड्डे में भीड़ खचाखच भरी हुई थी और गुरुजी एक जगह अलग खड़े हुए थे कि भीड़ के ठेलमठेल से दूर ही रह कर सबकुछ आसानी से देख पाएँ । वे जहां खड़े थे , एक उन्हें भी सहज ही देख लेगा । हवाई जहाज से उतर कर इन्दीराजी उन्ही के इन्तजार में खड़े लोगों की ओर बढ़ने लगी और अकस्मान उनकी नजर गुरुजी पर पड़ी तो वे उनकी ओर बढ़ने लगी और प्रतीक्षारत सभी को चकित करते हुऐ उन्हों ने गुरुजी के आगे झुक कर चरणस्पर्श प्रणाम किया। गुरुजी से आशीर्वादित होकर इन्दिराजी बाकी लोगों से मिलने गयीं।

एकत्रित लोगों ने महसूस किया कि श्रीमती गांधी ने नृसिंह गुरु के रूप में गांधीजी को देख कर ही चरणस्पर्श प्रणाम करने आयीं । लोग भी उसी से प्रभावित हुए और उन्हें गांधीजी के आचार विचार, रूप अपनाए नृसिंह गुरु में बापू को देखा । उसी विचार ने अवश्य ही श्रीमती गांधी को अनुप्रेरित किया होगा ।

एक और घटना है, दिसम्बर १६ , १९८३ की । श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डे जी पधारे हुए थे । तब वे ओड़िशा के महामहिम राज्यपाल थे । प्रखर तेजस्वी विद्वान, स्वतंत्रता संग्रामी ,भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के लेखक पाण्डेजी ने एक पत्रकार संगोष्ठी का आयोजन बुर्लास्थित अशोक निवास में करवाया था । सम्बलपुर के वयोज्येष्ठ पत्रकार होने के नाते गुरुजी प्रथम पंक्ति में बैठे हुए थे । वे बैठेबैठे उसी सोच में डूबे हुए थे कि राज्यपाल उन्हें पहचानेंगे या नहीं। उन्हें सुखद विस्मय तो तब हुआ , जब पाण्डेजी ने उन्हें सामने बैठे देखा और ''वाराणसी , '' १९४२ ये दो शब्द उनके कथन से सुन कर उनके सामने आगये तथा राज्यपाल के लिए निर्द्धारित प्रतिबन्ध (Protocol) का उल्लंघन करते से उनसे गले मिले और उन्होंने स्मरण भी किया कि १९४२ में वाराणसी की एक बैठक के अवसर पर उनकी गुरुजी से भेंट हुई थी ।

पूज्य गुरुजी के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में अहम् भूमिका थी कर्म निष्ठा और नि:स्वार्थता की। उसी के द्वारा मानों उनकी जीवनशैली नियंत्रित और परिचालित होती थी। भारतीय तत्वादर्श, कर्ममय जीवन में, ऋषि मुनि चिन्तकों का कहना है , निस्वार्थ सेवा से आन्तरिक पवित्रता अपने आप अधिष्ठित होकर ह्रदय स्वच्छ और निर्मल होजाता है , यह एक प्रकार योग-साधना है , जिससे सम्पूर्ण परितोष और चरमानन्द की प्राप्ति होती है । और उसी आन्तरिक अनन्दमयी भावना के कारण चेहरे पर मन्द मुसकान खिली रहती है तथा एक शाश्वत उज्वलता के कारण सौम्यता ही निखर आती है । उसी तरह नृसिंह गुरु दृढ़संकल्पी थे और प्रतिकूल, स्थितियों में अविचलित हुआ करते थे।

नृसिंह गुरुजी के लिए विविध क्षमता , पद प्रतिष्ठा अकितयार करना आसान-सी बात होती। परन्तु , वह दुराग्रह उनमें बिलकुल नहीं था । मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है , निष्काम कर्म ही परम धर्म है , इसी भावना से प्रतिबद्ध कर्मयोगी गुरुजी अधिक सन्तुष्ट थे देकर , और वह सन्तुष्टि पाने में नहीं थी । युवाकाल से अपनाए उस निष्काम कर्म मय जीवन के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में विकाश , कुछ भी जागतिक सम्पदा के हो पाना ही सम्भव नहीं था । न कभी उसके लिए गुरुजी ने कोई समान्य प्रयास ही किया , अत: शून्य जीवन में शून्यता ही बनी रही अन्त तक किन्तु कमियों की जगहों का आत्म संन्तोष से परिपूर्ण करते रहे तपस्वी निष्काम योगी गुरुजी, जागतिक उत्थान पतन में अड़िग अविचलित रहे जीवन भर। हो सकता है उनके उत्तराधिकारी उससे पीड़ित कवलित हुए हों , पर आज वे भी गर्वित हैं ।

उनके मुखमंडल पर सदा विराजित वह शान्त सौम्यता , मन्द मधुर मुसकान , सहज सरलता जो संत साधूओं की पहचान होती है , वही आगामी कल के लिए महात्मा गांधीजी, राष्ट्रपिता बापूजी तथा पश्चिम ओड़िशा के गांधीजी नृसिंह गुरु की याद दिलाती रहेगी। गुरुजी तो गांधीजी को गुरु ही मानते थे और निष्ठा के परिणामस्वरूप गुरु-शिष्य दोनों एक और अभिन्न हुए से मानें जाएँगे युगों तक ...

०००

कवि कुटीर,बलांगीर

२४.११.२००९

प्रकाशक की कलम से......

ओड़िशा के गांधी तथा अंचल के जानेमाने स्वाधीनता सेनानी स्वर्गीय नृसिंह गुरु की स्मृति में आयोजित विभिन्न सभा समारोह एवं प्रतियोगिताओं में उन की वर्पना 'पश्चिम ओड़िशा के गांधी 'के रूप में की जाती रही है । ऐसा करना एक तरह से उन महान आत्मा की विशाल छवि को सीमित करदेने के समान होता है । इसे लेकर बुद्धिजीवियों में अनेक बार चर्चा भी हुई है । उन्होंने कभी कभार प्रश्न भी किया है । यहां तक कि स्कूली विद्यार्थी जो स्वर्गीय गुरुजी के अेदर्शों से अनुप्रेरित हैं उन्हें भी यह उक्ति सुहाती नहीं है । यहां तक कि स्कूली विद्यार्थियों बीच बीते दिनों आयोजित.एक प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली छात्रा कुमारी आद्याशा पुरोहित ने मर्माहत होकर नगर के विशिष्ट लोगों के आगे यही सवाल उठाया था। राज्य के पूर्व विधानसभा अध्यक्ष श्री किशोर कुमार महान्ति ने स्वर्गीय गुरुजी के प्रति भावभीनी श्रद्धार्पण करते हुए उन्हें 'पश्चिम ओड़िशा 'के नहीं बल्कि 'ओड़िशा के गांधी' पुकारे जाने पर बल दिया था । गुरुजी के त्याग तथा मानवीय सहानुभूतिशील विचार और कर्मों की प्रतिबद्धता के लिए इस जीवनवृत्त के लेखक पद्मश्री विद्यावाचस्पति डॉ.श्रीनिवास उद्गाता ने कहा है कि पूज्य गुरुजी को 'ओड़िशा के गांधी' के रूप में विदित करना ही समीचीन होगा। इसके अतिरेक 'समदृष्टि' के सौजन्य से डॉ.देवी प्रसाद पट्टनायक की सम्पादना में प्रकाशित ओड़िआ 'विश्वनागरी' पत्रिका के दिसंबर २००९ अंक में 'ओड़िशा के गांधी नृसिंह गुरु' शीर्षक से एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। लोगों की महत्वाकांक्षा तथा आदर के सम्मान में नृसिंह गुरु स्मृति समिति की और से यह निर्णय लिया गया कि गुरुजी की जीवनी की रचना तथा उसी के अन्तर्गत उन महनीय व्यक्ति और आदर्श व्यक्तित्व की विवेचना विश्लेषण हो , वह भी हिन्दी में । क्यों कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के नाते प्रसंग को भाषा-भारती के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर एक विशाल व वृहत्तम मंच प्राप्त होगा । उस रचना के लिए पद्म श्री विद्यावाचस्पति डॉ.श्रीनिवास उद्गाता से अनुरोध करने पर वे तत्काल राजी होगये । अथक श्रम और लगन से बहुत ही कम समय में उद्गाताजी ने पुस्तक की रचना कार्य सम्पन्न करने तथा पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए प्रस्तुत कर देने के बावजूद अनेक अपरिहार्य कारणों से प्रकाशन रुका रहा । कमेटी की ओर से उद्गाताजी की निष्ठापर रचनात्मक कार्य कुशलता हेतु हम आभार मानते हैं ।

कमेटी का मानना है कि डॉ.उद्गाता जी सरीखे एक मर्मज्ञ विद्वान के द्वारा प्रणीत इस पुस्तक हेतु युवा पीढ़ी अन्तत: गुरुजी के महान आदर्शों से अवश्य ही अनुप्रेरित होगी तथा इस जीवन वृत्त से उन्हें दिगभ्रमित न होकर सही नागरिक के रूप में जीवन यथार्थ का सामना करने के लिए अप्रमित बल प्राप्त होगा । अंत में इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग देनेवाले सबके प्रति , विशेषकर स्मृति समिति के उपाध्यक्ष श्री अरविन्द महापात्र जी के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं ।

हेमन्त कुमार महापात्र